योगवाणी

वर्ष ४५, नवम्बर, २०२०

विषयानुक्रम

क्र.सं.			पृष्ठ
१.	पिण्डब्रह्माण्डव्यापक शिव		२
२.	श्रीगोरखनाथस्तव	: पण्डित बलजिन्नाथ	३
३.	योगामृत		५
४.	गोरखबानी		६
५.	अथ अवेद्यनाथ पञ्चाक्षरस्तोत्र	: शशि कुमार	७
६.	अमृतपुरुष भगवान् धन्वन्तरि का ध्यान		८
७.	समाधि	: योगी आदित्यनाथ	९
८.	जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सों भेंट	: प्रो. भगवती प्रसाद सिंह	१२
९.	महायोगी गोरखनाथ की लोकख्याति	: प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त	१५
१०.	महायोगी गोरखनाथ का लोक-सन्देश	: डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त	१८
११.	नाथपन्थ का साधना-पथ	: बृजेश मणि मिश्र	२२
१२.	सृष्टि की प्रथम सृष्टि - गाय	: डॉ. लालमणि तिवारी	२६
१३.	पधारो मेरे राम	: वीरेन्द्र यागनिक	३२
१४.	जे न मित्र दुख होहिं दुखारी	: डॉ. राघवाचार्य	३४
१५.	संस्कृत वाङ्मय में मानव जीवन की सार्थकता	: बृजभूषण राय 'वृज'	३६
१६.	प्रकृति-पूजा का महापर्व छठ	: पंकज चतुर्वेदी	४२
१७.	शतावर	: चौथा आवरण	

योगवाणी

वर्ष ४५, नवम्बर, २०२०

आर.एन.आई. २९०७५/७६

वार्षिक सदस्यता: १२५/-, द्विवार्षिक सदस्यता: २५०/-,

पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-, आजीवन सदस्यता: १२००/-,

एक प्रति का मूल्य: १५/-

मुद्रक: मोती पेपर कनवर्टर्स, डी4/1, सेक्टर 13, गीडा, गोरखपुर, दूरभाष : 0551-2580093

॥ ॐ ॥ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध सम्पादक

प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

फूलचन्द प्रसाद गुप्त

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - 273015

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (0551) 2255453, 2255454

फैक्स : (0551) 2255455

पिण्डब्रह्माण्डव्यापक शिव

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियर्विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥

वह भगवान् (परम शिव) सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है, समस्त प्राणियों के हृदयरूपगुफा में निवास करता है और सर्वव्यापी है, इसलिए यह कल्याणरूप परमेश्वर शिव सर्वत्र है। निश्चय ही यह महान्, समर्थ, ईशान (सर्वशासक) प्रभु अविनाशी, प्रकाशस्वरूप पुरुषोत्तम अपनी प्राप्तिरूप इस अत्यन्त निर्मल लाभ की ओर सबके अन्तःकरण को प्रेरित करने वाला है। परम पुरुष समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों को जानता है, सबका स्वामी और शासक है, वही सबसे बड़ा आश्रय है। सम्पूर्ण स्थावर और जंगम जगत् को वश में रखनेवाला, हंस–प्रकाशमय परमेश्वर नवद्वार वाले शरीर–रूपी नगर में अन्तर्यामी रूप से स्थित देही–परमात्मा है तथा बाह्य जगत् में लीलाप्रवृत्त है। वही पिण्डब्रह्माण्डव्यापक शिव है।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । ११, १२, १७-१८)

■

श्रीगोरक्षनाथस्तव

पण्डित बलजिन्नाथ

यच्छिष्यसन्तानपरम्पराभिर् लोकः कृतार्थीकृत एष सर्वः।
आकामरूपादभिर्हिङ्गुलाजं गोरक्षनाथं तमहं नमामि॥५॥

कामरूप से हिंगलाजपर्यन्त जिनकी शिष्यसन्तानपरम्पराओं से समस्त लोक (योगसाधनापदेश से) कृतार्थ है, मैं उन गोरक्षनाथ को नमस्कार करता हूँ।

यस्यानुगा योगिजनाः कुदेशे पाकाभिधे हिन्दुसपत्नकेऽपि।
सुनिर्भया योगविधिर्दिशन्तो जयन्ति तं योगगुरुं नमामः॥६॥

जिनके अनुयायी योगी हिन्दुओं के प्रतिस्पर्धी पाकिस्तान देश में अत्यन्त निर्भयतापूर्वक योगसाधना का सन्मार्ग-दर्शन करते हुए यश के भागी होते हैं, उन योगगुरु (गोरक्षनाथ) को हम नमस्कार करते हैं।

संसारदोषप्रशमैकहेतुं योगं फलाढ्यं खलु यो दिदेश।
योगीन्द्रवर्यं तमहं शरण्यं गोरक्षनाथं शरणं प्रपद्ये॥७॥

जिन्होंने संसार के दोषों (तापों) के प्रशमन के लिये एकमात्र विशिष्ट फलरूप योग का उपदेश दिया है, उन योगिन्द्रयों में श्रेष्ठ, त्राता–रक्षक शिवगोरक्षनाथ के मैं शरणागत हूँ।

गोरक्ष साक्षात्कृततत्वयोगिन् न तेऽस्ति कर्तव्यलवोऽपि शेषः।
तथापि लोकस्य हिताय नूनं त्वं भारते सञ्चरसीह नित्यम्॥८॥

हे गोरक्ष! आपने (अलखनिरञ्जनस्वरूप) तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है, (आप शिवस्वरूप हैं) इसलिये आप के लिये लवमात्र भी कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, फिर भी लोकहित (-सम्पादन) के लिये आप नित्य भारत में विचरण करते रहते हैं।

दुःशासनातङ्कभयेन भग्नाः कष्टेषु मग्नाः पशुमार्गलग्नाः।
वयं शरण्यं प्रणताः स्तुमस्त्वां कृपाकटाक्षैः प्रविलोकयास्मान्॥९॥

दुःशासन के आतंक से भयभीत होकर निराश, दुःख में व्याकुल और पशु के समान जीवनयापन करनेवाले हम विनत होकर आप ऐसे रक्षक का

स्तवन करते हैं, हमें अपनी कृपादृष्टि से देख लीजिये।

ब्रह्मर्षिराजर्षिनिषेवितायां सच्छासनं स्थापय पुण्यभूमौ।
प्रवाहयानन्दकरीं सुतूर्णं योगस्य गङ्गां पुनरत्र पुण्याम्॥१०॥
धर्मार्थकामेषु वय सुतुष्टाः भवेम सद्योगविधौ प्रवृत्ताः।
कृपाद्रदृष्ट्या प्रविलोकयन्नो योगेऽपि सम्यक् विधेहि॥११॥

ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों द्वारा सेवित इस पुण्यभूमि (भारत) में आप सत्यशासन की स्थापना कीजिए और फिर यहाँ आनन्ददायी पुण्यमयी पवित्र योग की गंगा अति शीघ्र प्रवाहित कीजिए। हम धर्म, अर्थ और काम में संतुष्ट हों–सफलमनोरथ हों और यथार्थ योगसाधना में प्रवृत्त हों। आप कृपासिक्त दृष्टि से हमें देखिए और योग (की साधना) में हमें अच्छी तरह सफल कीजिए।

ज्येष्ठमासेऽसिते पक्षे पञ्चम्यां गुरुवासरे।
नन्दवह्निनभोनेत्रे शिवे वैक्रमवत्सरे॥१२॥
कश्मीरदेशवास्तव्यो वलजिन्नाथपण्डितः।
जम्बुपुर्यामिदं स्तोत्रं निरमाद् भक्तिभावतः॥१३॥

सम्वत् २०३९ वि. के ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि, तदनुसार वृहस्पतिवार को कश्मीर-प्रदेशवासी बलजिन्नाथ पण्डित (मैं) ने जम्बुपुरी (जम्मू) में भक्तिभाव से इस स्तोत्र की रचना की।

अतितुच्छमपिस्तोत्रं पत्रपुष्पादिवन्मया।
गोरक्षनाथपदयोर्भक्तयानूनं समर्प्यते॥१४॥
गोरक्षनाथः सुप्रीतो भवतो दूरदोऽपि मे।
स्तवेन तस्य ये भक्तास्ते रमन्तां च पाठतः॥१५॥

पत्रपुष्पादि के रूप में इस अत्यन्त साधारण स्तोत्र को (आप) श्रीगोरक्षनाथ के चरणों में भक्तिपूर्वक समर्पित करता हूँ। हे गोरक्षनाथ! आप मुझ दूर रहने वाले पर भी इस स्तव से प्रसन्न हों। आप के सभी भक्त इसके पाठ से आनन्दित हों।

(गोरखचरित दर्शन विशेषांक जनवरी १९८७ से)

■

योगामृत

यस्मात्प्रकाशको नास्ति स्वप्रकाशो भवेत्ततः।
स्वप्रकाशो यतस्तस्मादात्मा ज्योतिः स्वरूपकः॥
अविच्छिन्नो यतो नास्ति देशकालस्वरूपतः।
आत्मनः सर्वथा तस्मादात्मा पूर्णो भवेत्खलु॥

आत्मा का क्योंकि कोई प्रकाशक नहीं है, इसलिए स्वतः वह प्रकाशमान रहता है, स्वयं ही प्रकाशमान होने के कारण वह ज्योतिस्वरूप है। देश-काल के प्रमाण से वह अविच्छिन्न नहीं है, (उसमें न देश-काल का कोई नियम है और न संकोच या विस्तार है) आत्मा सदा सब प्रकार से पूर्ण है।

यस्मान्न विद्यते नाशः पञ्चभूतैर्वृथात्मकः।
तस्मादात्मा भवेन्नित्यस्तन्नाशी न भवेत्खलु॥
यस्मात्तदन्यो नास्तीह तस्मोदेकोऽस्ति सर्वदा।
यस्मात्तदन्यो मिथ्या स्यादात्मा सत्यो भवेत्खलु॥

पंचभूतों के नाश से इस आत्मा का नाश नहीं होता है, क्योंकि आत्मा नित्य है, अविनाशी है, उसका नाश किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। जब उसके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं, तो यह निश्चय है कि एक मात्र अद्वैत आत्मा ही है। उसके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है, तब वह आत्मा ही एक मात्र सत्य है।

बाह्यानि सर्वभूतानि विनाशं यान्ति कालतः।
यतो वाचो निवर्तन्ते आत्मा द्वैतविवर्जितः॥

आत्मा के अतिरिक्त भिन्न पदार्थ काल के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं, आत्मा द्वैतरहित–स्वयंवेद्य है, वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

(शिवसंहिता १ । ५७-६०, ६४)

■

गोरखबानी

पवन हीं जोग पवन हीं भोग। पवन हीं हरै छतीसौं रोग।
या पवन कोई जांणै भेव। सो आपैं करता आपैं देव॥१४७॥

योग साधना का एक प्रमुख अंग पवन का संयम है। प्राणायाम के साधन से योग-भोग दोनों में निपुणता और सिद्धि मिलती है। जिसका शरीर प्राण का संयम करने से स्वस्थ और निर्विकार रहता है, उसके छत्तीसों (सारे) रोग नष्ट हो जाते हैं। जो साधक प्राण को अपने शरीर में स्थिर रखता है और इसका रहस्य समझ लेता है, वह सिद्ध हो जाता है। वह सृष्टि करने की शक्ति रखता है और शिव स्वरूप हो जाता है।

ब्यंद हीं जोग ब्यंद ही भोग। ब्यंद ही हरै चौसठि रोग।
या बिंद का कोई जांणै भेव। सो आपैं करता आपैं देव॥१४८॥

योगी साधक के लिए वीर्य (बिन्दु) की रक्षा अनिवार्य है। वीर्य रक्षा से योग और भोग दोनों की ही सिद्धि होती है। वीर्य के पुष्ट होने पर शरीर की शक्ति बनी रहती है और वह सदा स्वस्थ और नीरोग रहता है। उसके सभी (चौसठों) रोग नष्ट हो जाते हैं। जो योगी या साधक वीर्य का रहस्य समझ लेता है, वह स्वयं सृष्टि कर सकता है। वह ब्रह्मस्वरूप है और परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न हो जाता है।

साच का सबद सोना का रेख। निगुरां कौं चाणक सगुरा कौं उपदेस।
गुर का मुंड्या गुंण मैं रहै। निगुरा भ्रमै औगुण गहै॥१४९॥

सत्य शब्द (सत्स्वरूप) में स्थिति का मूल आधार है। सत्य की साधना खरा सोना है, जो समस्त कसौटियों, परीक्षाओं में धूमिल नहीं होता है। यह सत्य शब्द उन्हीं को प्राप्त होता है अथवा इसको धारण करने के वे ही अधिकारी हैं, जो गुरु की कृपादृष्टि से कृतार्थ और अनुग्रहीत हैं। जो व्यक्ति गुरु से हीन होते हैं (निगुरे होते हैं) वे चालाकी से अपनी सिद्धि का ढोंग करते हैं। जिस व्यक्ति को गुरु, ज्ञाननिष्ठ महायोगी अपनी शरण में स्वीकार कर दीक्षा प्रदान करते हैं, वही वास्तव में सत्यज्ञान का अधिकारी हैं और साधना-सम्बन्धी समस्त गुणों को ग्रहण कर लेता है। जो निगुरे हैं वे मात्र अवगुण ग्रहण करते हैं और भ्रमित होते रहते हैं।

■

अथ अवेद्यनाथ पञ्चाक्षरस्तोत्र

शशि कुमार*

अनन्तसत्कीर्तिविभूषिताय गोरक्षपीठस्य च रक्षकाय।
अस्मायननन्याय च साधकाय तेऽवेद्यनाथाय नमो नमश्च॥१॥

अनन्त पुण्य कीर्ति से विभूषित, गोरक्षपीठाधीश्वर अनन्य साधक, राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन अवेद्यनाथ महाराज को नमस्कार है।

वेद्याय विज्ञाय च वन्दिताय विप्रादिविद्यार्थिसुपोषकाय।
ब्रह्मस्वरूपाय बुधाय तस्मै तेऽवेद्यनाथाय नमो नमश्च॥२॥

वेद्य, वन्दनीय, विज्ञ, वन्दित, विप्र, क्षत्रिय आदि विद्यार्थियों के पालक-पोषक, ब्रह्मस्वरूप, विद्वान् अवेद्यनाथ महाराज को नमस्कार है।

द्यावापरं ब्रह्म गताय तुभ्यं दण्डेन कूर्चैश्च तदा जरायाम्।
दिव्यस्वरूपाय च मण्डिताय तेऽवेद्यनाथाय नमो नमश्च॥३॥

स्वर्गलोक से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर दण्ड और श्वेत दाढ़ी से सुशोभित, दिव्य स्वरूप, शोभायमान, अवेद्यनाथ महाराज को नमस्कार है।

नाथाय नारायणमूर्त्तये च नित्यं मनुष्यैर्निखिलैर्नुताय।
नाम्ना सहस्रेण नमस्कृताय तेऽवेद्यनाथाय नमो नमश्च॥४॥

नाथ, नारायण स्वरूप, नित्य सभी मनुष्यों द्वारा वन्दनीय सहस्रनाम से नमस्कृत, अवेद्यनाथ महाराज को नमस्कार है।

थकारशब्दो हि च मंगलाय तद्व्याधिपीडाभयरक्षकाय।
सदाऽजरायामरयोगिने च तेऽवेद्यनाथाय नमो नमो वै॥५॥

थकारस्वरूप मंगलकारी, व्याधिपीडाभय के रक्षक, अजर-अमर सिद्ध योगी अवेद्यनाथ महाराज को नमस्कार है।

■

*श्रीगोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर

अमृतपुरुष भगवान् धन्वन्तरि का ध्यान

अथोदधेर्मध्ध्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः।।
दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः।।
पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः।
स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः।
अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः।।
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेद द्दगिज्यभाक्

देवता और असुरों ने अमृत की इच्छा से जब और भी समुद्रमन्थन किया, तब उसमें से एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुए। उनकी भुजाएँ लम्बी और मोटी थीं, उनका गला शंख के समान उतार-चढ़ाववाला था। उनकी आँखों में लालिमा थी। शरीर का रंग सुन्दर और साँवला था, गले में माला थी, अंग-अंग आभूषणों से भूषित थे, शरीर पर पीताम्बर शोभित था, कानों में चमकीले मणिकुण्डल थे, चौड़ी छाती थी, तरुण अवस्था थी, सिंह के समान पराक्रम था। उनका सौन्दर्य अनुपम था। चिकने-घुँघराले केश लहरा रहे थे। उनके हाथ कंगन से अलंकृत थे और अमृतपूर्ण कलश से परिशोभित थे। वे साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश-अवतार थे। वे आयुर्वेद के प्रवर्तक धन्वन्तरि नाम से प्रसिद्ध हैं, वे यज्ञ-भोक्ता हैं।

■

समाधि

योगी आदित्यनाथ*

जब ध्याता, ध्यान से ध्येय विशेष से मिलकर लय हो जाता है तब द्वैतभावरहित वृत्तिनिरोध की अन्तिम अवस्था को ''समाधि'' कहते हैं। समाधि की अवस्था में ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का अपना रूप शून्य हो जाता है। ध्यान की अवस्था में साधक को यह बोध रहता है कि मैं 'ध्येय' का 'ध्यान' कर रहा हूँ किन्तु जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येय रूप में बदलने लगता है और उसमें अपने रूप का अभाव सा हो जाता है। साधना की यह अवस्था जिसमें ध्येय मात्र की प्रतीति हो 'समाधि' कहलाती है, परन्तु इसमें संसार का बीज विषय ध्येयाकार वृत्ति रूप से विद्यमान रहने के कारण इसे सबीज समाधि समझना चाहिए। क्योंकि निर्बीज समाधि में तो ध्येयाकार वृत्ति भी शेष नहीं रहती। हठयोग के अनुसार 'सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगत:' अर्थात् जैसे जल से मिल कर सेंधा नमक जलस्वरूप ही हो जाता है, वैसे ही आत्मा में योजित किया हुआ मन तदाकार होकर आत्मरूप ही हो जाता है। इस प्रकार आत्मा और मन की एकता को समाधि कहते हैं। मन को आत्मरूप बनाने के लिए मन का निरोध तब तक करें जब तक कि सब वासनायें नष्ट न हो जायें। योग साधना का प्रधान लक्ष्य यही है कि साधक स्थूल भाव से प्रगति करके सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता जाये अथवा भौतिकता को कम करके आत्म-तत्त्व को ग्रहण करता जाये। मनुष्य की चित्त वृत्तियाँ ही भौतिक अथवा स्थूल जगत् की वस्तुओं को ग्रहण करने वाली, उनमें लिप्त होने वाली होती हैं। जैसे-जैसे उनका निरोध किया जायेगा अर्थात् उनको बहिर्मुख अवस्था से अन्तर्मुख बनाया जायेगा, वैसे-वैसे साधक आत्मजगत् में प्रविष्ट होता जायेगा। इसका मुख्य साधन किसी विशेष विधि के द्वारा चित्तवृत्तियों को एक लक्ष्य पर केन्द्रित करता है। इस अभ्यास द्वारा अन्त में समाधि अवस्था की प्राप्ति हो जाती है। महर्षि पतंजलि ने इसीलिए प्रारम्भ में ही

*गोरक्षपीठाधीश्वर, श्रीगोरक्षपीठ, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर; मुख्यमंत्री-उत्तर प्रदेश

योग सिद्धि के मूल मंत्र 'चित्तवृत्तिनिरोध' का उपदेश दिया। जो लोग जन्म या संस्कारवश योग के उपयुक्त ज्ञान और वैराग्य की स्वाभाविक भावना वाले हैं (जैसे विदेह, प्रकृतिलय अथवा तीव्र संवेग वाले आदि हैं) उनके लिए शीघ्र ही समाधि अवस्था की प्राप्ति हो जाती है। ऐसे साधक बिना किसी विशेष साधन के ही ईश्वर का ध्यान, आराधना करते हुए उसके स्वरूप को जान लेते हैं और उसमें स्थित हो जाते हैं। ऐसे साधक चाहे नियम पूर्वक आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदि का अभ्यास करें चाहे न करें वे अपनी अन्तःकरण की शुद्धता और निष्कामवृत्ति द्वारा योग की चरम समाधि तक पहुँच जाते हैं।

सामान्य श्रेणी के साधक जो जन्मकाल से सामान्य दर्जे के वातावरण मनुष्यों की तरह विभिन्न वासनाओं, राग-द्वेष आदि से ग्रस्त हैं, एक ऐसा साधन मार्ग बताया गया है जिससे उनका क्रमशः आत्म विकास हो जाये, हृदय की मलिनता दूर होती जाये और चित्त शुद्ध होकर वे परमात्म-तत्त्व को जान सकने के अधिकारी हो जायें। ऐसे साधक के लिए तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान का उपदेश दिया है। पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रभाव से संयम और वैराग्य की ओर दत्तचित्त नहीं है, उसे तप द्वारा शरीर, मन तथा इन्द्रियों को शुद्ध और सूक्ष्मदर्शी बनाना चाहिए तथा ईश्वर प्रणिधान द्वारा अपने समस्त कर्मों का फल ईश्वर को समर्पण करने का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने पर मानसिक कुशलता दूर होती है और योग-साधना की पात्रता उत्पन्न होती है। जब तक मानसिक वृत्तियाँ शुद्ध नहीं, तब तक योग की क्रियाओं का विशेष फल नहीं हो सकता। चित्त में विक्षेप, लय, कषाय और रसास्वादन रूप जो दोष रहते हैं, उनसे रहित हुए चित्त का विचरण करना 'विक्षेप' है। विषयों में विचरण करते-करते पकित हुए चित्त का अपने कारण रूप अज्ञान में ही लीन होना ही 'लय' है। चित्त का न तो विषय में विचरण करना और न अज्ञान में ही लीन होना तथा न ध्येयाकारता ही ग्रहण करना, वरन् चेष्टा रहित निस्तब्ध हो जाना 'कषाय' है। उक्त तीनों व्यापारों से रहित होने पर चित्त ब्रह्माकार न होकर ब्रह्मानन्द

का आस्वादन करने लगे तो यह 'रसास्वाद' है। यहाँ पर आशंका हो तो सकती है कि जो चित्त ब्रह्मानन्द का आस्वादन करने लगे, उसमें दोष कैसा? परन्तु जैसे जल का गुण शीतलता है, लेकिन शीतलता को जल नहीं कह सकते, वैसे ही ब्रह्म कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि शीतलता मात्र को पी नहीं सकते और उससे प्यास भी नहीं बुझ सकती, उसी प्रकार ब्रह्म के आनन्द मात्र में लीन होने से ब्रह्म का अनुभव नहीं हो सकता तो ब्रह्म की प्राप्ति ही कैसे समझी जा सकती है? इस प्रकार ब्रह्मानन्द के रसास्वादन के अनुभव को भी राग में सम्मिलित समझना चाहिए। किसी प्रकार की लालसा, चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, जब तक चित्त में विद्यमान रहेगी, तब तक समाधि की अवस्था नहीं हो सकती। इसलिए ब्रह्मानन्द के स्वाद को भी व्यर्थ समझकर चित्तवृत्ति को ब्रह्मानन्द आदि पाँच प्रकार के क्लेश जिस स्थिति विशेष में समाप्त हो जाते हैं वह स्थिति 'समाधि' कहलाती है। समाधि दो प्रकार की होती है।

1. सम्प्रज्ञात समाधि 2. असम्प्रज्ञात समाधि

यद्यपि ये दोनों भेद समाधि की पूर्व और अन्तिम अवस्था के सूक्ष्म मात्र हैं। संशय, विपर्यय आदि से रहित यथार्थ रूप से ध्येय विषय का ज्ञान सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। समाधि की इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रियुटी के लय की अपेक्षा सहित नियमित काल पर्यन्त चित्त की वृत्तियों की एक अद्वितीय वस्तु में तदाकार रूप से स्थिति होती है। यद्यपि इस समाधि में द्वैत भाव रहता है, तथापि अद्वैतभाव की इस प्रकार प्रतीति होती है कि जैसे घट और सिकोरे दोनों ही मिट्टी से बने हैं, इसलिए इनमें और मिट्टी में कोई भेद नहीं है। समाधि की यह अवस्था सबीज बतलायी गयी है, क्योंकि इसमें ध्येय रूप विषय का आलम्बन अवश्य रहता है। इसीलिए इस समाधि का लक्ष्य नित्य मोक्ष न होकर अनित्य संसार ही है। अर्थात् सम्प्रज्ञाति समाधि की स्थिति में कुछ अज्ञान अवश्य ही बीज रूप में शेष रह जाता है।

(क्रमशः)

जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सों भेंट

प्रो. भगवती प्रसाद सिंह*

सूफी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी की उपर्युक्त पंक्ति पूर्व मध्यकालीन समाज की गुरु गोरखनाथ के कालजयी व्यक्तित्व के प्रति अगाध आस्था व्यक्त करती है। यह एक आश्चर्य की बात है कि अवतारवाद के विरोधी होते हुए भी मुसलमान संतों ने नाथपन्थी योगियों की भाँति ही 'आदिनाथ नाती मच्छिन्द्रनाथ पूता' गोरखनाथ को अजर-अमर मान कर सिद्धि-प्राप्ति के लिये उनके साक्षात्कार की अनिवार्यता स्वीकार की। इससे तत्कालीन इस्लामी धर्मसाधना पर गोरखपन्थ के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। सूफी प्रेमाख्यानकारों, विशेष रूप से जायसी ने अपनी कृतियों में गोरखनाथ और उनकी साधना की प्रशस्ति के साथ-ही-साथ नाथयोगी के वेष, आचार-विचार, साधना-पद्धति, साध्यतत्त्व, सिद्धियोग तथा सिद्धों की विशेषताओं पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है। यह सर्वविदित है कि सभी सूफी प्रेमगाथाओं में नायक नाथयोगी है। चित्तौड़ का राजा रत्नसेन गुरु गोरखनाथ की प्रेरणा से सोलह हजार राजकुमारों के साथ योगी का ही रूप धारण कर इष्ट-सिद्धि के लिए सिंहल को प्रस्थान करता है –

तजा राज राजा भा जोगी। औ किगरीं कर गहे बियोगी।।
चंद वदन औ चंदन देहा। भस्म चढ़ाइ दीन्ह तन खेहा।।
मेखल सिंगी चक्र धंधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी।।
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।।
मुद्रा स्रवन कंठ जप माला। कर उदपान काँध बघ छाला।।
पाँवरि पाँव लीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेष कै राता।।

(पदमावत १२६ । १-७)

इसी प्रसंग में उन्होंने योगियों की वैराग्य-भावना तथा त्यागवृत्ति की भी चर्चा की है –

जोगिहि काह भोग सौं काजू। चहै न मेहरी चहै न राजू।
जूड़ कुरकुटा पै भखु चाहा। जोगिहि तात भात दहुं काहा।।

(पदमावत ३२ । ६-७)

---

*पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

इसके बाद वे नाथपन्थी साधना की दुरूहता का वर्णन करते हुये उसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं।

साधन्ह सिद्ध न पाइए, जब लगि तपै न तप्प।
सो पै जाने बापुरा, करै जो सोस कलप्प॥

(पदमावत ११ । ५)

बैठ सिंघ छाला होइ तपा। पदुमावित पदुमावति जपा॥
दिष्टि समाधि ओहिं सौ लागी। जेहि दरसन कारन बैरागी॥
नैन रात निसि मारग जागे। चकित चकोर जानि ससि लागे॥
कुण्डल गडे सीस भुँइ लावा। पावरि होउं जहाँ ओहि पावा॥

(पदमावत, मण्डपगमन-खण्ड १६७ । १, २, ५, ६)

जोगी दिष्टि दिष्टि सौं लीन्हा। नैन रूप नैनन्ह जिउ दीन्हा॥
परामाति गोरख का चेला। जिउ तन छाँड़ि सखा कहँ खेला॥

(पदमावत, वसन्तखण्ड १९४ । ४-६)

साधना के इस स्तर पर पहुँच कर गोरख का चेला अहंता खोकर ध्येय से एकात्मता स्थापित कर लेता है –

चीन्है सोइ रहै तेहि खोजा। जस बिक्रम औ राजा भोजा॥
कै जिय तंत मंत सौं हेरा। गयो हेराइ जबहिं भा मेरा॥

(पदमावत, पार्वतीखण्ड ११२ । ५-६)

यही सिद्धिदशा है। योगसाधना के प्रवर्तक आदिनाथ शिव से योगी वेशधारी रत्नसेन की भेंट होने पर उनमें प्राप्त सिद्धों के लक्षण का विवरण देते हुए जायसी लिखते हैं –

सुनि के महादेव के भखा। सिद्ध पुरुष राजै मन लखा॥
सिद्ध अंग नहिं बैठे माखी। सिद्ध पलक नहिं लागै आँखी॥
सिद्धहि संग होइ नहिं छाया। सिद्धहि होइ न भूख औ माया॥

(पदमावत, पार्वती-महेशखण्ड २१२ । १-३)

ऐसे सिद्ध महापुरुष सामान्य लोगों द्वारा पहचाने नहीं जा सकते –

जो जग सिद्ध गोसाईं कीन्हा। परगट गुपुत रहै को चीन्हा॥

(पदमावत २१२ । ४)

जायसी का मत है कि सिद्धि प्राप्त करने वाली इस नाथपन्थी

साधना में गुरु का मार्गदर्शन अनिवार्यतः अपेक्षित है। साधना पूरी होने पर साधक को चिरंजीवी गोरखनाथ योगदीक्षा देकर सिद्धिदान करते हैं –

बिनु गुरु पंथ न पाइये, भूले सोइ जो मेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सों भेंट॥

(पदमावत २१२ । ७-८)

विशिष्ट आध्यात्मिक विभूतियों के चिरजीवी होने की यह भावना भारतीय और सामी दोनों परम्पराओं में समान रूप से समादृत है। पौराणिक साहित्य में हनुमान, अश्वथामा, व्यास, परशुराम आदि महापुरुषों को कालजयी कहा गया है। इस आदर्श पर मध्यकालीन लोकविश्वास में आल्हा और रामभक्ति साहित्य में श्रीकृष्णदास पयहारी के चिरजीवी होने का उल्लेख मिलता है। इसका कारण उनकी योगसिद्धि माना जाता है। आल्हा की तपोभूमि योगसाधना का केन्द्र 'कजरी-वन' (कदली-वन) कहा जाता है और श्रीकृष्ण पयहारी की साधना-स्थली जयपुर के निकटस्थ गलता अथवा गालवाश्रम है।

श्रीकृष्णदास पयहारी गोरखनाथ की भाँति ही साधकों का पथ-निर्देश करते हुए चित्रित हुए हैं। वे स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य थे और १६वीं शती में विद्यमान थे। प्रसिद्ध है कि १९वीं शती देवरिया जनपद के प्रसिद्ध महात्मा श्रीलक्ष्मी नारायण दास पौहारी को उन्होंने हाथी के रूप में दर्शन देकर पैकोली, बैकुण्ठपुर तथा बड़हलगंज की परिक्रमा करायी थी और अन्त में मनुष्य-रूप धारण कर उन्हें अयोध्या के महात्मा अवधप्रसाद से दीक्षा ग्रहण करने का निर्देश दिया था।

(श्रीपौहारी जीवन-चरित्र पृष्ठ १९-२१)

इसी प्रकार इस्लामी परम्परा में भी ख्वाजा खिज्र को नित्य वर्तमान माना जाता है और विभिन्न देशकाल में उनके द्वारा साधकों के मार्गदर्शन के उल्लेख पाये जाते हैं। जायसी ने स्वयं अपनी नादपरम्परा के पूर्वज शेखदानियाल द्वारा सिद्ध महापुरुष हजरत ख्वाजाखिज्र का दर्शन और उनकी प्रेरणा से मुर्शिद-रूप में शेख सैयद राजे की प्राप्ति का वर्णन किया है।

(परमावत स्तुतिखण्ड - २० । १, २, ५, ६)

(क्रमशः)

(गोरखचरित-दर्शन विशेषांक जनवरी १९८७ से)

महायोगी गोरखनाथ की लोकख्याति

प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त*

प्राचीनकान से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित भारतीय धर्म साधना के इतिहास में नाथ सम्प्रदाय और उसके सबसे महान् व्यक्तित्व महायोगी गुरु गोरखनाथ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है कि शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योग मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे (नाथ सम्प्रदाय)। यह निर्विवाद तथ्य है कि भक्ति आन्दोलन के पूर्व नाथपन्थ भारत वर्ष का सर्वाधिक प्रभावशाली धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन था। यह इससे पता चलता है कि पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में गांधार तक तथा उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तथा श्रीलंका तक में इसका व्यापक प्रसार रहा है। नेपाल में तो इसका व्यापक प्रभाव रहा ही है। इस सम्प्रदाय के सबसे प्रमुख गोरखनाथ के व्यक्तित्व पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं कि गोरखनाथ की संगठन शक्ति अपूर्व थी। उनका व्यक्तित्व समर्थ धर्मगुरु का व्यक्तित्व था। उनका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल, बुद्धि भावावेश से एकदम अनाविल और कुशाग्र थी। उनके चरित्र में कहीं भी भाव विह्वलता नहीं है। जिन दिनों उन्होंने जन्मग्रहण किया था, उन दिनों भारतीय धर्म साधना की अवस्था विचित्र थी। शुद्ध जीवन, सात्विक वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना उन दिनों अपनी निम्नतम सीमा पर पहुँच चुकी थी। गोरक्षनाथ ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। लोक जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववती से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी, उसे गोरक्षनाथ ने नयी प्राण-शक्ति से अनुप्राणित किया। किसी भी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता

*कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

नहीं दिखायी। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं (नाथ सम्प्रदाय)।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के उपर्युक्त कथन से महायोगी गोरक्षनाथ के महत्त्व का स्वाभाविक रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुतः योगिराज गोरक्षनाथ का व्यक्तित्व धार्मिक और साम्प्रदायिक क्षेत्र में इतना व्यापक और प्रभावशाली था कि तत्कालीन धार्मिक और आध्यात्मिक इतिहास का विवेचन और विश्लेषण उनके योगदान की चर्चा के बिना असम्भव है। शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा की पर, लोक जीवन से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं था। गुरु गोरखनाथ का व्यक्तित्व इस दृष्टि से विशिष्ट है कि समाज और लोक जीवन से उनका सीधा सम्बन्ध था। नाथपन्थ वस्तुतः लोक धर्म ही था। योगिराज गोरखनाथ का सामाजिक संगठन का पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इसलिए वे एक प्रकार से जन-नायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। यही विशेषता उन्हें शंकराचार्य से भी अधिक विशिष्ट बना देती है। आचार्य शंकर ने अपने अद्वैतवाद में बौद्धों के दार्शनिक मतवाद को आत्मसात कर उन्हें निस्तेज कर दिया तो गोरखनाथ ने सिद्धांत, साधना और संगठन तीनों स्तरों पर पूर्ववती शैव, शाक्त और बौद्धमतों को हतप्रभ कर नाथपन्थ में समाहित कर लिया। ''गोरखनाथ के संयमपूर्ण योग प्रचार और संयमपूर्ण व्यावहारिक जीवन का बाद की अनेक शताब्दियों तक ही नहीं आज भी जो व्यापक और प्रेरणादायक प्रभाव दिखायी पड़ता है, वह भी उन्हें विशिष्ट बनाता है। तत्कालीन विकृति का जो दृढ़ प्रतिकार गोरखनाथ ने किया और उससे जो लोक ख्याति उन्होंने अर्जित की, वह उनके व्यक्तित्व को महान् बना देती है। तत्कालीन आध्यात्मिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में यदि हम नाथ सम्प्रदाय और गुरु गोरक्षनाथ के महत्त्व का आकलन करते हैं तो ज्ञात होता है कि जिस समय भारतवर्ष के धर्म सम्प्रदायों में वामाचार, पंचमकार आदि के परम परिशुद्ध और साधनोन्नतकारी रूप का दुरुपयोग और विकृत विनियोग होने लगा था तथा उसे मनुष्य की विगलित वासनाओं की पूर्ति का साधन समझा जाने लगा था, उस समय साधना की पवित्रता, चरित्र की परमोच्चता संयमपूर्ण

जीवन की शक्तिमत्ता और आडम्बररहित जीवन की महिमा का उद्घोष गोरखनाथ ने ही किया। उन्होंने विभिन्न आचारों में विभक्त शैवों को संगठित करने का कार्य किया (गोरखनाथ-नागेन्द्रनाथ उपाध्याय)।''

योगिराज गोरक्षनाथ का महत्त्व अनेक दृष्टियों से है पर, सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने पतंजलि के योग दर्शन को युग सम्मत बनाकर और व्यवस्थित रूप देकर उसे सामान्य जन तक पहुँचाया। पतंजलि ने हठयोग का सैद्धांतिक रूप स्थिर किया, गोरखनाथ ने उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। दूसरा महत्त्व यह है कि उन्होंने लोक भाषा में अपने उपदेश दिये। उनकी रचनाएँ संस्कृत में भी हैं पर, उनकी हिन्दी रचनाएँ लोगों की जिह्वा पर बसी हुई हैं। उन्होंने एक प्रकार से लोकोक्ति का रूप ले लिया है। कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी, हबकि ने बालिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पाँव, 'साधो मन चंगा तो कठौती ही गंगा', हसिबा षेलिबा रहिबा रंग कांम क्रोध न करिबा संग, गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुरु बिन ग्यांन न पाईला रे भाईला, धन जोबन की करै न आस चित्त न राखै कामिनी पास, जैसे छंद सामान्य जन की जिह्वा पर हैं और सूक्ति का रूप धारण कर चुके हैं। इन्द्रिय निग्रह, शब्द और कर्म की एकता, मितकथन, बाह्य आडम्बर के स्थान पर आंतरिक शुचिता के महत्त्व का प्रतिपादन कर गोरखनाथ ने तत्कालीन समाज के भीतर नैतिक बोध जागृत किया।

■

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेववा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

मोक्ष ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका किसी दूसरे स्थान पर निवास हो या जिसकी प्राप्ति के लिए किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़े। अन्तःकरण (हृदय) से अज्ञानग्रन्थि का नाश होना ही मोक्ष है।

(शिवगीता १३।३२)

महायोगी गोरखनाथ का लोक-सन्देश

डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

(सितम्बर अंक से आगे)

गुरु गोरखनाथ जी के सन्देश मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाते हैं। जीवन जीना भी कला है। सभी को जीवन जीने नहीं आता है। महान् सन्तों की मार्गदर्शक वाणी हमें जीवन को जीने की कला बताती है।

नाथपन्थ में नारी को माता माना गया है। गोरखनाथ जी भिक्षाटन के समय स्त्रियों को 'माई' शब्द से सम्बोधित करते थे। माता की इसी रूप में स्वीकृति है पर, योगी को स्त्री-संग से बचने के लिए कहा गया है। यदि योगी स्त्री का संग करते हैं तो उनके रोम-रोम को नरक के समान पीड़ा भोगनी होती है।

'कनक कामिनी भोग बिलास, कहै भरथरी कंथ विणास।'

(नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृ.-१०५)

गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं-

जोगी सो जे मन जोगवै, बिन बिलाइत राज भोगवै।
कनक कांमनी त्यागे दोइ, सो जोगेस्वर निरभै होइ॥

(गोरखबानी, सबदी-१०२)

स्त्री का संग भगवान् की भक्ति में बाधा उपस्थित करता है। यह सत्य है कि ब्रह्मचर्यव्रती सनक, सनन्दन और सनत्कुमार के साथ सुन्दर रमणी शोभित नहीं हो सकती है। जिस तरह से आग पर जली हाँडी हाथ में धारण करने पर हाथ को काला कर देती है, उसी तरह योगी यदि स्त्री के साथ रहता है तो वह स्त्री उसे वासना में आसक्त कर सकती है।

कदै न सोभै सुन्दरी सनकादिक के साथि।
जब तब कलंक लगाइसी, काली हांडी हाथि॥

(गोरखबानी, सबदी-२५०)

*प्रवक्ता-हिन्दी, महाराणा प्रताप इण्टर कॉलेज, गोरखपुर

गोरखनाथ जी ने पराई निन्दा, मद्य-मांस-भांग-अफीम आदि के प्रयोग का निषेध किया है। उनके विचार से मांस खाने से दया-धर्म का नाश, मदिरा पीने से प्राण में नैराश्य व्याप्त हो जाता है तथा भांग-अफीम से ज्ञान-ध्यान से मनुष्य विरत हो जाता है।

जोगी होइ पर निंद्या झषै। मद मांस अरु भांगि जो भषै।
इकोतरसै पुरिषा नरकहि जाई। सति-सति भाषंत श्रीगोरष राई॥

(गोरखबानी, सबदी-१६४)

अवधू मांस भषंत दया का नास। मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत। जम दरबारी ते प्रांणी रोवंत॥

(गोरखबानी, सबदी-१६५)

जो मनुष्य अफीम और भांग का सेवन करता है उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। सत्-असत् का विवेक नष्ट हो जाता है। भांग के सेवन से पित्त का प्रकोप बढ़ता है और वायु की गति नीचे की ओर होने से प्राण-अपान का सामरस्य नष्ट हो जाता है। शरीर रोगी हो जाता है। यही कारण है कि गोरखनाथ ने भांग का सेवन नहीं किया।

आफू षाय भांगि भसकावै। ता मैं अकिलि कहां तै आवै।
चढ़ता पित्त उतरतां बाई। तातैं गोरष भांगि न षाई॥

(गोरखबानी, सबदी-२०९)

सूकै कंठ अरु भूष संतापै। देह बिसर अर निंद्रा ब्यापै।
बुधि बिन बकै बिकल होय जाय। तातैं गोरष भांगि न षाय॥

(गोरखबानी, सबदी-२१३)

धोतारा न पीवो रे अवधू भांगि न षावौ रे भाई।
गोरष कहैं सुनो रे अवधू या काया होयगी पराई॥

(गोरखबानी, सबदी-२४१)

गोरखनाथ जी कहते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा में अभेद है। वे एक साथ ही रहते हैं। परमात्मा प्रत्येक प्राणी में व्याप्त हैं। '**ईशावास्यं इदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**' ऐसी स्थिति में किसी भी जीव की हत्या

नहीं करनी चाहिए और न ही उसके मांस को अपना आहार ही बनाना चाहिए।

जीव सीव संगे बासा। बधि न षाइबा रुध्रमासा।
हंस घात न करिबा गोतं। कथंत गोरष निहारि पोतं।।

(गोरखबानी, सबदी-२२६)

गोरखनाथ जी पिण्डधारियों से कहते हैं कि तुम जीव-हत्या क्यों करते हो? वह तुम्हारे ही समान शरीरधारी है। तुम्हें यदि शिकार का शौक है तो अपने मन को मारो। ये पाँच भौतिक मृग हैं जो बुद्धि रूपी उपवन को नष्ट कर देते हैं। इन्हें मारने की आवश्यकता है। योग का मूल तो दया है।

जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी। मारिलै पंच भू म्रगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दयादाण।।

(गोरखबानी, सबदी-२२७)

मन, मोक्ष और बन्धन का कारण है। मन अत्यन्त चंचल है। सांसारिक विषयों में आसक्त कर मनुष्य को पथभ्रष्ट करता है। मन को जो लोग वश में कर लेते हैं, यही मन उनके लिए मोक्ष का कारण बनता है। कारण कि मन उनके अनुकूल हो जाता है। मन का पवित्र होना मानव जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गोरखनाथ जी कहते हैं कि मन के शुद्ध होने पर कठवत का जल भी गंगाजल सदृश हो जाता है।

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा। बांध्या मेल्हा तो जगत चेला।
बदंत गोरष सति सरूप। तत विचारै ते रेष न रूप।।

(गोरखबानी, सबदी-१५३)

गोरखनाथ जी का यह कथन बाद में सन्त रैदास से जोड़कर लोक में प्रसिद्ध हुआ। सन्त रैदास भी मानते थे कि मन की शुद्धता ईश्वर भक्ति के लिए आवश्यक है। बिना मन की शुद्धता के आध्यात्मिक उन्नति नहीं प्राप्त की जा सकती है।

अहंकार साधना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। अहंकार की समाप्ति के बाद ही भक्ति प्रारम्भ होती है। अहंकार दूसरे के अस्तित्व को

स्वीकार करने नहीं देता। स्वार्थ सत्ता का भोगी बना देता है। अतः अहंकार से दूर रहना चाहिए।

आपा भांजिबा सतगुर षोजिबां जोग पंथ न करिबा हेला।
फिरिफिरि मनिषा जनम न पायबा करि लै सिध पुरिस सूँ मेला॥

(गोरखबानी, सबदी-२०३)

कबीर भी अहंकार को ईश्वर-भक्ति में बाधक मानते हुए कहते हैं कि जब तक मेरे अन्दर अहं था तब तक ईश्वर के निवास की अनुभूति नहीं हुई।

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं॥'

क्रोध मनुष्य को नरकगामी बनाता है। गोस्वामी जी ने इसे नरक का मार्ग बताया है। गुरु गोरखनाथ जी ने कहा कि मनुष्य को हमेशा हँसते और खेलते रहना चाहिए किन्तु काम-क्रोध का साथ नहीं करना चाहिए।

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राषि आपनां चीत॥'

(गोरखबानी,सबदी-७)

(क्रमशः)

('महायोगी गोरखनाथ' से साभार)

हियँ निरगुन नयनन्हि सगुन रसना नाम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥

हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान, नेत्रों के सामने सगुण स्वरूप की सुन्दर झाँकी और जिह्वा से सुन्दर राम-नाम का जप करना। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह ऐसा है मानो सोने की सुन्दर डिबिया में मनोहर रत्न सुशोभित हो।

(दोहावली - ७)

नाथपन्थ का साधना-पथ

बृजेश मणि मिश्र*

हिन्दू धर्म विविधताओं से भरा है। यहाँ साधना की अनेक पद्धतियाँ हैं, अनेक सम्प्रदाय हैं, सभी में लोक कल्याण के साथ-साथ ईश्वर से आत्म साक्षात्कार के मार्ग बताये गये हैं। हिन्दू धर्म में प्रमुख रूप से शैव एवं वैष्णव मत प्रचलित हैं। बाकी सभी मत इन्हीं दो मतों से ही सम्बन्धित हैं। यदि हम नाथ सम्प्रदाय की बात करें तो नाथ सम्प्रदाय का सम्बन्ध शैव सम्प्रदाय से है, क्योंकि नाथ सम्प्रदाय के महानायक योगेश्वर शिव हैं। नाथ चिन्तन में शिव शक्ति को विश्वबीज के रूप में अभिलक्षित किया गया है। शिव को ज्ञान का आदि स्रोत माना गया है और जो योग तत्त्व के रूप में आभासित होता है। नाथपन्थ का मूलमंत्र है– मानव मूल्य की अभिरक्षा। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और जाति-पाँति के संकीर्ण मानव-मन को निर्मल एवं मुक्त मन में बदलना, द्वन्द्व, विषाद और विषम विचार बोध के कलह से निकालकर समरस मानव मन समाज के निर्माण की प्रतिज्ञा नाथपन्थ में है। भारतीय समाज की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की प्रतिष्ठा तथा रूढ़ि और अन्धविश्वास से मुक्ति का सन्देश भी नाथ सम्प्रदाय में है।

नाथ सम्प्रदाय साधना का सर्वोच्च पथ इन अर्थों में भी है कि योग साधना में सैद्धान्तिक पक्ष से अधिक व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया जाता है। इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अनुयायी मात्र अध्यात्म अर्थात् आत्म ध्यान के विधि योग का अभ्यास करते हैं। इनके लिए शास्त्रों का अध्ययन गौड़ होता है। साधना में केवल शरीर ही साधन है, इसलिए समस्त प्रकार के परिग्रहों से विरत होते हैं। पद और प्रतिष्ठा की कोई आकांक्षा इन्हें छू भी नहीं पाती, मान-अपमान की अनुभूति से परे, अपने-पराये राजा रंक तथा सोना और मिट्टी में समान दृष्टि रखते हैं। सुख-दु:ख यहाँ तक ठण्डे और गर्म में भी भेद नहीं करते। अत: जो स्वयं का अध्ययन करने के लिए समस्त बाहरी आडम्बरों से विरत और मुक्त हों उन्हें किसी से शास्त्रार्थ में हार या जीतकर, क्या खोना क्या पाना शेष नहीं

*आचार्य-श्रीगोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर

रह जाता है। इस सम्बन्ध में आदिगुरु गोरक्षनाथ ने कहा है, ''मेरा मानना है कि सभी ग्रन्थों को कुएँ में फेंक दें क्योंकि इस समय जो स्वयं ही मुक्त नहीं हैं, वे दूसरों को मोक्ष का उपदेश देने में किस तरह समर्थ हो सकते हैं। ये शास्त्र रचना करने वाले निपुणता के प्रदर्शन, अभिमान, जीविकोपार्जन अथवा अपने अभिलाषा की पूर्ति के लिए शास्त्र की रचना करते हैं। इसलिए ये रचनाएँ पारमार्थिक पुरुषों के समक्ष कुछ भी महत्त्व नहीं रखती हैं।''

गुरु गोरखनाथ जी के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उनका पूरा ध्यान मन और शरीर के शोधन पर है। शास्त्रों में लिखी बातें व्यावहारिक नहीं हो सकती हैं, इसलिए नाथ योगियों का मानना है कि मोक्ष की प्राप्ति बिना गुरुकृपा और शुद्ध देह के सम्भव नहीं है। उनका मानना है कि पिण्ड (शरीर) से ही जीवन से मुक्ति प्राप्त होती है। इसलिए उन्होंने उपासना का प्रधान साधन पिण्ड को माना, क्योंकि मानव पिण्ड अनेक शक्तियों का आश्रय स्थल है। यह अन्य समस्त ज्ञात पिण्डों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस प्रकार शुद्ध देह से परम पद को प्राप्त करना ही नाथ सम्प्रदाय का लक्ष्य है। नाथ योगियों का मूलभूत सिद्धांत– ''पिण्ड ब्रह्माण्ड का ही लघु संस्करण है।'' अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में वह पिण्ड में भी है। (पिण्ड माहि ब्रह्माण्ड समाया) इसलिए नाथ सम्प्रदाय का उपासना करने वाला उपासक सिद्धि के लिए बाहरी दुनिया में भटकने के बजाय अपने पिण्ड में ही सिद्धि तलाशता है। योग की क्रियाओं से शुद्ध देह की प्राप्ति होती है और शुद्ध देह से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।

नाथ सम्प्रदाय में देह शुद्धि के लिए यौगिक षट्कर्म की बात की गई। योग दर्शन में योग के आठ अंग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि स्वीकार किये गये हैं। इन्हें अष्टांग योग कहा जाता है। परन्तु नाथ योगी अपने षड्योग दर्शन के साधना के अन्तर्गत यम और नियम की परिगणना न करने के बावजूद भी इसे अपनी साधना में प्रमुख स्थान देते हैं। योग के अन्तर्गत नाथ योगी आसन और प्राणायाम के अभ्यास के पश्चात मुद्रा की साधना करते हैं। जीवात्मा और परमात्मा की एकता की जो उत्पत्ति है, उसे मुद्रा कहा गया है। हठयोग की पुस्तकों में

मुख्यतः दस मुद्रा विधियों की चर्चा की गई है– महामुद्रा, महाबंध, महाभेद, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, सहजोली और अमरोली के साथ शक्ति चालन। इनमें से किसी एक की सफलता असीम अनुभूति का साक्षात्कार करने में समर्थ है। महामुद्रा, खेचरी एवं महाबन्ध मुद्राएँ विशेष महत्त्वपूर्ण बतायी गयी हैं।

लिखने और पढ़ने में उपर्युक्त वर्णित मुद्राएँ बहुत कठिन लग रही हैं लेकिन साधक समर्थ गुरु के शरण में यदि इन्हें सीखता है तो अल्प समय में उसे ज्ञान हो जाता है और शरीर शोधन की क्रिया में अपने आप को समर्थ पाता है।

गोरखनाथ जी के अनुसार शरीर के नौ द्वारों को बन्द करके वायु के आने का मार्ग अवरुद्ध कर लिया जाए तो निश्चय ही कायाकल्प होगा और सिद्ध उपजेगा।

अवधू नव घाटी रोकि ले बाट।
बाई बजिलै चौसठी हाट।
काया पलटै अबिचल बिध।
छाया बिबरजित निपजै सिध॥

गुरु गोरखनाथ जी ने जितनी बातें कहीं हैं, सब व्यावहारिक हैं। उनका अनुसरण करके ही साधक साधना के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। गोरखनाथ जी कहते हैं–

''गोरख कहै सुनहू रे अवधू, जग में ऐसे रहना।
आँखों देखना, कानों सुनना, मुख से कछु न कहना॥

अर्थात् : संसार में बहुत सोच विचार कर काम करना है वरना संसार के लोग आप को अपमानित कर देंगे। इस प्रकार से आँखों से तो देखो, कानों से सुनो लेकिन कुछ कहने की जरूरत नहीं है। अपने शरीर को शुद्ध करो।

नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी न केवल पूरे भारत में अपितु दुनिया के विभिन्न देशों में भी फैले हैं। किसी भी सम्प्रदाय की अपेक्षा नाथ सम्प्रदाय के मठ एवं साधना स्थल अधिक मात्रा में है। नाथ साधना में एक साथ ज्ञान

है, विज्ञान है, धर्म है, दर्शन है, अध्यात्म है, योग है, साधना है, सत है, एक आदर्श मन की कल्पना है, कला है, तड़पती जन आकांक्षाएँ हैं, नैतिक सदाचार का प्रवचन है, साथ ही अपने व्यावहारिक पहलू के आधार पर भविष्य को एक दिशा एवं गति प्रदान करने की परम्परा भी है, जिस सम्प्रदाय में इतनी बहुलता हो, साधना का मार्ग इतना पवित्र हो, तो साधक बरबस ही आकर्षित होगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नाथ साधना पद्धति के मूल बिन्दु तीन हैं– योग, गुरु तथा पिण्ड में ब्रह्माण्ड। इस साधना को योग ज्ञान अथवा योग युक्त ज्ञान भी कहा जा सकता है। इसमें सच्चा साधक आत्मानुशासन के व्यवस्थित मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने शरीर, इन्द्रिय और मन की शुद्धि कर अपने वासनाओं और जगत् की लालसाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है। नाथ सम्प्रदाय में वासनाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए योग एकमात्र साधन है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हठयोग साधना का सर्वोच्च पथ है।

■

अवधू ईस्वर हमारै चेला भणींजै मछींद्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती तार्थैं हम उल्टी थापना थापी॥

हे अवधूत! योगमहाज्ञान, जो शिवप्रदत्त कहा गया है, मूल-स्वरूप (शिवगोरक्ष-रूप) मुझसे ही प्रकट है। परमाराध्य ईश्वर, जो योगज्ञान के प्रतिपाद्य हैं, इस दृष्टि से हमारे ही शिष्य हैं और उनसे महायोगी (हमारे गुरु) मत्स्येन्द्रनाथ ने महायोगज्ञान श्रवण किया था, उन्हें हमारा पौत्र शिष्य स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। मैंने गुरु की गरिमा सुरक्षित और मर्यादित रखने के लिये ही गोरक्षनाथ के रूप में प्रकट होकर मत्स्येन्द्रनाथ को अपना पथप्रदर्शक गुरु बनाया। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो गुरुतत्त्व से रहित पृथ्वी का नाश हो गया होता, इसलिये हमने गुरु होकर भी शिष्य का वेश अपना कर उलटा (विपरीत) अनुक्रम स्थापित किया।

गोरखबानी-सबदी - १४४

सृष्टि की प्रथम सृष्टि - गाय

डॉ. लालमणि तिवारी*

गाय वैदिककाल से भारतीय धर्म और संस्कृति-सभ्यता की प्रतीक रही है। स्वयं वेद गाय को नमन करता है– **''अघ्न्ये! ते रूपाय नमः।'**

'हे अवध्य गौ! तेरे स्वरूप के लिए प्रणाम है।'

ऋग्वेद के अनुसार 'जिस स्थल पर गाय सुखपूर्वक निवास करती है, वहाँ की रज तक पवित्र हो जाती है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है।'

गौएँ विश्व की माता मानी गयी हैं– **'गावो विश्वस्य मातरः।'** स्वयम्भू श्रीब्रह्मा जी ने जब लोकसृष्टि की कामना की थी, तब उन्होंने समस्त प्राणियों की जीवन-वृत्ति के लिये पहले-पहल गौओं की ही सृष्टि की थी– अर्थात् गौ सृष्टि की पहली सृष्टि है।

'लोकान् सिसृक्षुणा पूर्वं गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा।'

गौ माता मातृशक्ति की साक्षात् प्रतिमा है। जिस दिन विश्व में गौएँ नहीं रहेंगी, उस दिन विश्व मातृशक्ति से वियुक्त हो जाएगा और उस दशा में कोई भी प्राणी नहीं बचेगा। प्राचीन युगों में भारत में जो विबुध-विस्मयकारी वैभव विद्यमान होने की विशद् चर्चा पुराणेतिहासों में मिलता है, उस वैभव की मूलाधार गौएँ ही थीं।

पुराणों में अनेक जगह 'गोमती-विद्या' और 'गो-सावित्रीस्तोत्र' का उल्लेख प्राप्त होता है। वे भगवान् व्यासदेव की रचनाएँ हैं। इनमें उन्होंने कहा है– 'संसार की रक्षा के लिये वेद और यज्ञ ही दो श्रेष्ठ उपाय हैं और इन दोनों का संचालन गाय के दूध, घी और बैलों के द्वारा उत्पन्न किये व्रीहि से निर्मित चरु, पुरोडाश, हविष्य आदि से ही सम्पन्न होता है। गौएँ स्वर्ग जाने की सीढ़ी हैं। गौएँ सब प्रकार से कल्याणमयी हैं। देवता तथा मनुष्य सबको भोजन देने वाली भी गौएँ ही हैं–

'अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्।'

हमारे जन्म से मृत्युपर्यन्त सभी संस्कारों में पञ्चगव्य की अनिवार्य

*उत्पाद व्यवस्थापक, गीताप्रेस, गोरखपुर

अपेक्षा रहती है। गाय अपनी उत्पत्ति के समय से ही भारत के लिये पूजनीय रही है। उसके दर्शन, पूजन, सेवा-शुश्रूषा आदि में आस्तिक जन पुण्य मानते हैं।

गाय सर्वदेवमयी है– **'सर्वे देवाः स्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः।'**

गाय के शरीर में सभी देवताओं का निवास है, अतः गाय सर्वदेवमयी है। भारतीय संस्कृति यज्ञ-प्रधान है। वेद से लेकर रामायण, महाभारतादि इतिहाग्रन्थों तक में सर्वत्र यज्ञ को ही सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यज्ञ के आधार हैं– मन्त्र और हवि, जिनमें मन्त्र ब्राह्मण के मुख में निवास करते हैं तो हवि गाय के शरीर में। हवि के अभाव में यज्ञ की कल्पना भी सम्भव नहीं। इसी से गाय भारतीय धर्म और संस्कृति की मूलधार रही है। आनन्दकन्द, मदनमोहन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने तो यही कामना की है–

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

भारतीय संस्कृति मानवेतर प्राणियों में गाय को सर्वाधिक महत्त्व देती है। गाय उसी प्रकार रक्षणीय है, जिस प्रकार हम भूमि और राष्ट्र की रक्षा करते हैं। भूमि, राष्ट्र तथा गौ की रक्षा आर्यत्व की रक्षा है। हिन्दुत्व की रक्षा है और रक्षा है– मनुष्य के अन्दर के शुचित्व की, उसके भीतर की मानुष-भाव की।

इसी सन्दर्भ में एक घटना स्मृति पटल पर आ गयी, बात जनवरी सन् १९२८ की है। गोसेवा की साकार प्रतिमा महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय महाराज प्रयाग में त्रिवेणी के पावन तट पर 'अखिल भारत वर्षीय सनातन धर्मसभा' के अधिवेशन में व्याख्यान-वाचस्पति पं. दीनदयाल जी शर्मा शास्त्री के साथ उपस्थित थे।

महान् गोभक्त हासानन्द जी वर्मा गोहत्या के विरोध में काला कपड़ा पहने तथा मुँह पर कालिख पोते हुए अधिवेशन में उपस्थित हुए।

मालवीय जी महाराज को सम्बोधित कर गोभक्त हासानन्द जी ने कहा– 'गऊ माता भारत तथा हिन्दुत्व का मूल है। आप 'गोहत्या-बंदी' के लिये कोई ठोस योजना बनाइये।'

इस पर महामना बोल उठे– 'हासानन्द! तुम मुख में कालिख लगाकर फिर मेरे सामने आ गये। अरे गोहत्या के कारण केवल तुम्हारा मुँह ही काला नहीं हो रहा है, हम सब भारतवासियों के मुख पर कालिख है। आओ, गोरक्षा के भीम! गंगाजल से तुम्हारे मुख की कालिमा का धो दूँ।' महामना ने त्रिवेणी के पावन जल से गोभक्त हासानन्द जी के मुँह की कालिख धो डाली तथा उसी समय त्रिवेणी का पावन गंगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की 'हम जीवनभर गोरक्षा तथा गोसेवा के लिये प्रयासरत रहेंगे।'

इसी समय पण्डित दीनदयाल जी ने 'गो-सप्ताह' मनाने का प्रस्ताव रखा तथा 'अखिल भारतीय गोरक्ष-कोष' की स्थापना की घोषणा की गयी।

महामना मालवीय जी महाराज ने सन् १९२८ में कलकत्ता में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में स्पष्ट कहा था– ''गौ-माता भारतवर्ष का प्राण है। उसकी हत्या धर्मप्राण भारत में सहन नहीं की जानी चाहिए।'

गाय, गंगा, गीता और गायत्री– ये चारों शब्द हिन्दू-संस्कृति के आधार-स्तम्भ हैं। इनको सबल रूप में पाकर ही हमारी यह उदार एवं उदात्त आर्य-संस्कृति विश्व में अपना विशिष्ट एवं श्रेष्ठ स्थान बनाये हुए है। पर विडम्बना यह है कि आज हमारी ही गलतियों के कारण इन चारों की बड़ी दयनीय स्थिति हो गयी है। गंगा प्रदूषित हो रही है, गीता का अध्ययन-अध्यापन समाप्तप्राय हो गया है, आज के चकाचौंध के वातावरण ने गायत्री के जप को भुला दिया है और निरीह एवं निर्दोष गाय हमारी असीम अर्थलिप्सा का शिकार बनकर कत्लगाहों तथा कसाई-घरों की शोभा बढ़ा रही है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारी उदात्त संस्कृति की यात्रा में जो गिरावट आयी है, उसे देखकर शर्म से हमारा माथा झुक जाता है। गायों का वध जिस रूप में आज कुछ प्रदेशों को छोड़कर भारत में हो रहा है, उससे गोवंश के सर्वनाश की तथा राष्ट्र के पतन की भयंकर समस्या उपस्थित हो गयी है। उत्तर प्रदेश सरकार ने तो गोवंश की रक्षा के लिये अनेक योजनाएँ लागू की हैं। गोसेवा आयोग का गठन किया है, विकास खण्ड स्तर पर गोआश्रय स्थल बनाये गये हैं। अन्य प्रदेशों की सरकारों को भी उत्तर प्रदेश सरकार का अनुकरण करते हुए गोवंश के संरक्षण के लिये ठोस उपाय करने चाहिये। प्राचीन काल से ही ऋषि-संस्कृति और कृषि-संस्कृति दोनों की

आधारशिला गाय ही रही है। ऋषियों के आश्रम गायों से सुशोभित रहते थे। गोसेवा कर गोदुग्ध से अपनी मेधा को पवित्र कर आश्रमों एवं गुरुकुलों के छात्र गार्हस्थ्यजीवन में प्रवेश करते थे और अपने चरित्र की धवलता से मानवता के पथ का विस्तार करते थे।

यदि हम प्राचीन भारतीय इतिहास के दर्पण में झाँककर देखें तो पता चलता है कि गोसेवा से ही भगवान् श्रीकृष्ण को भगवत्ता, महर्षि गौतम, कपिल, च्यवन, सौभरि तथा आपस्तम्ब आदि को परम सिद्धि की एवं महाराज दिलीप को रघु-जैसे चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हुई थी। महर्षि च्यवन और आपस्तम्ब ने अपना मूल्य गाय से लगाया था।

प्राचीनकाल की बात है भृगु के पुत्र च्यवन नामक एक महर्षि थे। वे बड़े तपस्वी थे। एक बार उन्होंने एक महान् व्रत का आश्रय लेकर जल के भीतर रहने का संकल्प किया। अभिमान, क्रोध, हर्ष, सुख-दुःख, शोक आदि का परित्याग कर वे बारह वर्ष तक पानी के अन्दर ही समाधिस्थरूप में रहे। महात्मा के ऐसे स्वभाव व तपश्चर्या देखकर सभी जलचर प्राणी उनके मित्र बन गये। जलचर मत्स्यादि प्राणियों को उनसे कोई भय नहीं लगता था। एक बार महर्षि च्यवन अत्यन्त श्रद्धाभाव से नत होकर गंगा-यमुना के संगम में जल के भीतर प्रविष्ट हुए। कभी जल-समाधि लगा लेते, कभी निश्चेष्ट हो जल के ऊपर बैठ जाते। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन कुछ मल्लाह मछलियों को पकड़ने की इच्छा से हाथ में जाल लिये उस स्थान पर आये, जहाँ महर्षि च्यवन जल-समाधि लगाये थे। मल्लाहों ने मछली पकड़ने के उद्देश्य से जाल को पानी में फैलाया। संयोग से जाल में मछलियों के साथ महर्षि च्यवन भी फँस गये। मल्लाह जाल खींचने लगे तो उन्हें अधिक बल लगाना पड़ा। वे समझे कि आज कोई बहुत बड़ा या जलजन्तु भी जाल में फँस गया है। उन्होंने पूरे जोर से जाल को खींचा, मछलियों के साथ महर्षि च्यवन भी जाल में फँसकर पानी के बाहर आ गये। उस समय उनके सारे शरीर में सेवार लिपटा हुआ था।

(क्रमशः)

पधारो मेरे राम

वीरेंद्र यागनिक*

(श्री राम जन्मभूमि की और उसके फलस्वरूप उसके भूमि पूजन का भाव ही शरीर को रोमांचित करता है, मन को परमानंद की अनुभूति और बुद्धि को निर्मल करके कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। अतः यह संपूर्ण श्री राम जन्मभूमि आंदोलन की घटनाएँ आज के युग में त्रेता युग की उन घटनाओं की बिम्ब ही प्रतीत होती हैं।)

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड का प्रारम्भ करते हुए तुलसी ने लिखा–

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जंह तहं सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥

राम जी के वनवास की चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हो रही थी। अवध की नर नारियों की व्याकुलता और आतुरता बढ़ रही थी, राम के सब कुशल आगमन की प्रतीक्षा में अवध के सभी जन नेम, धर्म, आचार, व्रत उपवास करके भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे। उधर राजभवन में राज माताएँ बैठी–बैठी शकुन मना रही थी कि मेरे बालक कब आयेंगे–मुंडेर पर बैठे काक से पूछती हैं–

बैठी सगुन मनावति माता
कब ऐहें मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता

हे काक–बताओ न! मेरे बालक सकुशल इस भवन में आकर हमें कब आनन्द प्रदान करेंगे? यह त्रेता युग की बात है, तथापि उसका कुछ अनुभव तो आज भारत के जन भी उसी प्रकार से कर रहे हैं कि वह शुभ घड़ी कब आयेगी, जब हमारे रामलला सकुशल अपनी जन्मस्थली पर निर्मित भव्य मंदिर में विराजमान होंगे। भाद्रपद की द्वितीया, बुधवार, ५ अगस्त २०२० अभिजीत नक्षत्र ११.३० बजे श्री राम जन्मभूमि के भूमि पूजन के शुभ मुहूर्त का स्वागत करने के लिए अयोध्या उसी प्रकार से सज–धज–संवर कर तैयार हो रही थी जैसे त्रेता युग में राम के आगमन के समय वह सजी सँवरी थी–तुलसी ने लिखा–

*डी1611, उपवन टॉवर, अप्पर गोविंद नगर, मलाड (पश्चिम), मुम्बई 400097

अवधपुरी प्रभु आवत जानी।
भई सकल सोभा के खानी।।
बहई सुहावन त्रिबिध समीरा।
भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।

चारों तरफ का वातावरण अत्यन्त मनोरम हुआ, सरयू का नीर निर्मल हो गया और अत्यन्त शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहने लगी, दिशाएँ प्रसन्न हुईं और उस मंगलमय क्षणों में राम लक्ष्मण सीता पुष्पक विमान से अवध पधारे थे। वैसा ही कुछ वातावरण का अनुभव इस कलयुग में श्री अयोध्या में भी किया जा सकता था। जब श्री राम जन्मभूमि मन्दिर का भूमि पूजन करने भारत के यशस्वी प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी अवध में पधारे थे। सम्पूर्ण हिन्दू समाज स्वयं को धन्य एवं गौरवान्वित अनुभव कर रहा था, क्योंकि यह ५०० वर्ष के सुदीर्घ कालखंड की तपस्या, त्याग और तेजोमय प्रयत्नों के संघर्ष का प्रतिफल था। इस संघर्ष और विराट आंदोलन की ऐसी सुखद और आनन्ददायी परिणति होगी, इसकी तो कल्पना भी मुश्किल है किंतु 'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करे सब कोई' – जो राम के प्रति समर्पित होता है, राम को अपना साध्य और साधन मानता है, उस पर राम जी अवश्य कृपा करते ही हैं, शेष सभी संसार के तत्त्व भी सहयोग करते हैं। ९ नवंबर २०१९ को सर्वोच्च न्यायालय का सर्वसम्मति से लिया गया निर्णय इस रामकृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं लगता है? और यदि ऐसा है तो महर्षि वाल्मीकि की उक्ति हमारे विश्वास को पुष्ट कर देती है कि राम साक्षात् विग्रहवान धर्म हैं और धर्म की सदैव विजय होती है। जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है – यतो धर्मस्ततो जयः।

श्री राम जन्मभूमि मंदिर की इस परिणति और उसके फलस्वरूप उसके भूमि पूजन का भाव भी शरीर को रोमांचित करता है, मन को परमानंद की अनुभूति और बुद्धि को निर्मल करके कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। अतः यह सम्पूर्ण श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन की घटनाएँ आज के युग में त्रेता युग की उन घटनाओं की बिम्ब ही प्रतीत होती हैं।

यह एक संयोग है कि रामायण के कुछ प्रसंगों और राम जन्मभूमि

आन्दोलन की कुछ घटानाओं में बड़ा तादात्म्य सा दिखाई देता है। राम कथा में जिस प्रकार जगतजननी सीता का अपहरण रावण ने किया था यदि देखें तो उसी प्रकार हमारी श्री राम जन्मभूमि मन्दिर का अपहरण और उसका मस्जिद में परिवर्तन बाबर ने भी तो किया था। लेकिन सीता जी को जिस प्रकार अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे श्री हनुमान जी के द्वारा अभय प्रदान किया गया था और उन्होंने मुक्ति के लिए आश्वस्त किया था। वैसे ही तो श्री राम जन्मभूमि की मुक्ति और भव्य मन्दिर निर्माण की युक्ति का शंखनाद श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन के प्रणेता और प्रेरणा पुरुष श्री अशोक सिंघल के समर्थ नेतृत्व में हुआ था। अशोक वृक्ष के नीचे अपने सन्ताप के दिन गुजार कर भगवती सीता मुक्त हुई थी, उसी प्रकार श्री अशोक सिंघल के नेतृत्व में श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन का जो उत्कर्ष हुआ, उससे सम्पूर्ण हिन्दू समाज के विराट् स्वरूप का जो प्रकटीकरण हुआ जिसके फलस्वरूप आज श्री राम जन्मभूमि अपनी पूरी गरिमा और महिमा के साथ पुनः प्रतिष्ठित होने जा रही थी।

तुलसी ने अपने श्रीरामचरितमानस में जिस प्रकार रामकथा के विविध प्रसंगों को अनेक पात्रों जैसे सुमत, निषाद, अंगद, सुग्रीव, शबरी के चरित्रों से गरिमामयी बनाया है तथा सन्त महात्माओं जैसे अत्रि-अनुसूया, शरभंग, सुतीक्ष्ण, शबरी से तेजोमय व स्मरणीय बनाया है और जिनके त्यागमय जीवन से समाज को शिक्षा मिलती है, वैसे ही हम देखते हैं कि श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन की गाथा में भी हमें पू. वामदेव जी महाराज, पूज्य शंकराचार्य वासुदेवानंद जी महाराज, पू. नृत्य गोपाल दास जी, महन्त दिग्विजयनाथ जी, महन्त अवेद्यनाथ जी, महन्त योगी आदित्यनाथ जी, श्री अशोक सिंघल, आचार्य श्री धर्मेन्द्र, पू. साध्वी ऋतम्भरा, साध्वी उमा भारती आदि जैसे अनेक सन्त-महात्माओं साधुओं ने भी अपने तेजोमय नेतृत्व से ही समाज को सदैव जागृत रखा, उसी प्रकार से सामाजिक राजनीति क्षेत्र के श्री लालकृष्ण आडवाणी, श्री मुरली मनोहर जोशी, आचार्य गिरिराज किशोर, श्री कल्याण सिंह ने उक्त आन्दोलन की यज्ञाग्नि को सदैव प्रज्वलित रखा और उसे निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने में अपनी अहम भूमिका निभाई। आज जब श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन अपने उद्देश्य को

प्राप्त कर चुका है, उन सभी महानुभावों, सत्पुरुषों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना हम सब का कर्तव्य है, जिनके अतुल्य त्याग, तपस्या और पुरुषार्थ से आज यह पावन प्रसंग उपस्थित हुआ है। ऐसी ही कृतज्ञता का ज्ञापन तो श्री राम ने भी किया था, जब अयोध्या में उनके राज्याभिषेक के बाद उन्होंने अपने सभी सहयोगियों, बंदर-भालुओं जो उनके साथ लंका विजय के समय आये थे, सुग्रीव आदि को विदा किया था, श्री राम जी ने कहा – सब ममप्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउ मोर यह बाना – अर्थात् अब आप सब अपने-अपने घर पधारो, वैसे तो मुझे अपने परिवार, सगे सम्बन्धी सभी प्रिय हैं परन्तु आप जैसे लोगों के समान, जिन्होंने मेरा संकट में साथ दिया है, सहयोग दिया है मुझे कोई प्रिय नहीं है। अतएव जिन लोगों ने श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन को अपना सहयोग दिया हो, सब के प्रति हृदय से साधुवाद। विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, हिन्दू समाज और सन्त परम्परा के अनेक अखाड़ों, विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों जिन्होंने अहर्निश अपनी सेवाएँ देकर इस संघर्ष को अपना सम्बल प्रदान कर सफल बनाया। तथापि जय यात्रा केवल और केवल हिन्दू चेतना और हिन्दू अस्मिता हिन्दू जन मन की राम में अचल निष्ठा और अधिक आस्था का परिणाम है।

■

अधुना कथयिष्यामि योगसिद्धिकरं परम्।
गोपनीयं सुसिद्धानां योगं परमदुर्लभम्॥
सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥

अब मैं (शिव जी) परमसिद्धि प्रदान करने वाले परम दुर्लभ योग का वर्णन करता हूँ। सिद्धों को इसे अत्यन्त गोपनीय रखना चाहिए। जब गुरु की कृपा से उनके उपदेशानुसार योगाभ्यास करने पर (मूलाधार में) सोयी कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है, तब (प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मस्थ्र तक वायु का संचार होने पर) छहों चक्रों और ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र – तीनों ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है।

शिवसंहिता-चतुर्थ पटल - २१, २२

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी

डॉ. राघवाचार्य*

भगवान् श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम एवं महापुरुष मात्र नहीं हैं, अपितु साक्षात् धर्म हैं। वाल्मीकि रामायण में कहा गया है, ''रामो विग्रहवान् धर्मः'' यानी भगवान राम धर्म के साक्षात् विग्रह हैं। धर्म शब्द का अर्थ कर्तव्य भी है। पिता, पुत्र, पत्नी, प्रजा के प्रति कर्तव्य। वस्तुतः यह कर्तव्य पदार्थ ही धर्म है। श्रीराम का सम्पूर्ण चरित्र इन समस्त कर्तव्यों का दर्पण है। वेदादि ग्रन्थों तथा अन्यान्य शास्त्रों ने धर्म अथवा कर्तव्य के जो मूल्य-लक्षण प्रतिपादित किये हैं, भगवान् राम उसके मूर्तिमंत विग्रह हैं। मित्र धर्म भी मित्र के प्रति होने वाले कर्तव्य का बोधक है। श्रीराम के चरित्र में उनका मित्र धर्म मानवता की उच्चतर सम्भावना का स्पर्श करता है। प्रभु राम अपने मित्र धर्म के पालन से मित्र का इहलोक ही नहीं, परलोक भी दिव्यता से सराबोर करते हैं। श्रीराम का मित्र धर्म जीव को ब्रह्म-परमात्मा से जोड़ने का सुदृढ़ सेतु है। भगवान श्रीराम कहते हैं, मित्र भाव से कोई मुझे प्राप्त होता है, तो मैं उसका त्याग नहीं करता हूँ। इस मित्र भाव को ही श्रुति ने कहा कि जीव और ब्रह्म सनातन मित्र हैं।

श्रीराम का मैत्री जीव को निर्भय होकर श्रीराम की शरण में आने का मार्ग सुगम करता है। श्रीराम लौकिक दृष्टि से भी मित्र धर्म के प्रति पूर्ण सजग-संवेदनशील और अपने व्यक्तित्व के अनुरूप शील-औदार्य से युक्त हैं। इसका उदाहरण भगवान् स्वयं सुग्रीव से वार्ता करते हुए प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं: ***जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।*** यानि राघव की दृष्टि में जो मित्र के दुःख से दुःखी न हो, वह व्यक्ति तो देखने लायक भी नहीं है। मित्र वही है, जो मित्र के थोड़े से दुःख को भी देखकर उस दुःख को मिटाने का कार्य करे। मित्र वही है, जो अपने मित्र को कुमार्ग से हटाकर सद्मार्ग में लगा दे। मित्रता वही है, जहाँ

*जगद्गुरु रामानुचार्य एवं अध्यक्ष - श्रीरामलला देवस्थान सेवा-ट्रस्ट, अयोध्या

किसी भी प्रकार का स्वार्थ न हो। इसके ठीक विपरीत भाव जहाँ हो, वहाँ मित्र धर्म नहीं है। ऐसे मित्र का त्याग ही उचित है। राघव की यह शिक्षा रामचरितमानस में इन शब्दों और उक्ति के रूप में आज भी चरितार्थ है, ***अस कुमित्र परि हरेहि भलाई।*** जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगती है, तो प्रभु श्रीराम विलाप करते हुए कहते हैं कि हमारा जो होगा, वह होगा पर, तुम्हारे पौरुष के बल पर मैंने विभीषण को राजा बनाने का वचन दिया था। अब मेरे वचन का क्या होगा। मेरे मित्र विभीषण का क्या होगा। रामचरितमानस में मित्र विभीषण के प्रति के क्षणों में भी राम की चिन्ता इस तरह वर्णित है ***होंहिहै काह बिभीषण की गति सोचि रही भर छाती।*** मित्र विभीषण की चिन्ता में श्रीराम स्वयं आकुल हो रहे हैं। भक्ति के आचार्यों ने स्थिति का समीकरण भक्त और भगवान के सम्बन्धों से परिभाषित किया है।

भक्ति और मैत्री के प्रति श्रीराम का यह भाव बालि वध के बाद भी पूरी मार्मिकता से व्यंजित है। बालि की मृत्यु के बाद सुग्रीव रोने लगे, तो श्रीराम भी रोने लगे। लक्ष्मण जी ने पूछा सुग्रीव इसलिए रो रहे हैं कि बालि इनका भाई था, परन्तु आप क्यों रो रहे हैं? प्रभु श्रीराम ने कहा, सुग्रीव का दु:ख मेरा दु:ख है, इसलिए मैं भी रो रहा हूँ। यह है श्रीराम का मित्र धर्म। मित्रता का धर्म-प्रीति का मर्म यथार्थ में प्रभु श्रीराम ही जानते हैं : ***नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सन जान जथारथ।।*** यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने पद-प्रतिष्ठा-योग्यता के प्रासाद से उतरकर सहजता के धरातल पर पैर रखता है। तभी मैत्री धर्म का निर्वाह होता है। ***सब जानत प्रीति रीति रघुराई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई।।*** कोई भगवान् श्रीराम को केवट का मित्र कहे, तो प्रभु श्रीराम को केवट को सुख होता है और वानर-बन्धु कहे तो प्रभु उसे अपनी बड़ाई मानते हैं।

■

संस्कृत वाङ्मय में मानव जीवन की सार्थकता

बृजभूषण राय 'वृज'*

समस्त संस्कृत वाङ्मय वैदिक काल से अद्यतन मानव जीवन को सार्थक बनाने में ही प्रयत्नशील रहा है। क्योंकि संस्कृत साहित्य की मूल अवधारणा विश्वबन्धुत्व की स्थापना रही है। समग्रता में समस्त विश्व को देखने की, विकसित करने की, आचारवान् बनाने की, शक्तिसम्पन्न करने की, देश-राष्ट्र एवं जाति वर्ग की सीमाओं से ऊपर उठाने की, चिन्तन प्रक्रिया रही है। ''आचारात् लभते ह्यायुः, आचारात् लभते श्रियम्'' सभी को आचारवान् सुसंस्कृत एवं शिक्षित करना मूल उद्देश्य रहा है। आधि दैविकता में रचा-बसा समस्त संस्कृत वाङ्मय आधिभौतिकता को ही सम्पन्न बनाने को प्रयत्नशील है। वैसे देववाणी का पठन-पाठन जैसा होना चाहिये, हो नहीं पा रहा है, पर जरूरत इस बात की है कि विश्व को छोड़कर हम अपने देश के हर छात्र-छात्राओं को देववाणी की सम्यक् शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करें। भाषा, वेषभूषा एवं भोजन किसी भी व्यक्ति के स्वभाव को बदल सकता है।

''नीति नयनम्'' हमारे संस्कृत वाङ्मय में १६ नीति के ग्रन्थ संकलित हैं। विदुर नीति से लेकर घटकर्पर नीति शतक तक। नीति, व्यक्ति की आँख है। आँखें हमेशा सच ही देखती हैं। जब हमारे सामने सन्मार्ग दिखायी पड़ता है तो भटकाव की सम्भावना नहीं रहती। ''धारयते इति ध र्मः'' धर्म वही है जिसे हम धारण करें। धर्म इहलोक एवं परलोक दोनों मार्ग प्रशस्त करता है, पर नीति मूलतः इहलोक को ही समृद्ध करती है। सत्य, प्रेम, अहिंसा, करुणा, सहयोग, सदाचरण, दया, सहकार इत्यादि सद्गुणों को नीति के साथ धर्म भी समृद्ध करते हैं।

हमारे संस्कृत साहित्य में धर्म एवं नीति का जितना सुन्दर सजीव विवेचन किया गया है, वैसा विश्व की किसी अन्य भाषाओं में दिखायी नहीं देता है। मानव जीवन को सार्थक बनाने की सतत् चिन्तन धारा देववाणी

*पूर्व अध्यापक, भारतीय इण्टर कॉलेज, तीहामुहम्मदपुर, गोरखपुर

में सन्निहित है यथा ''येषां न विद्या तपो न दानं ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।'' पशुता से मनुष्यता की ओर चलने की सतत् साधना यत्र-तत्र-सर्वत्र देववाणी में दिखायी देती है। संस्कृत के विद्वान् कवि भतृहरि ने साहित्य, कला एवं संगीत को ऊँचा स्थान दिया है, यहाँ तक लिखा है कि ''साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानः, तद् भागधेयं परमं पशूनाम्।।'' नीति शतक, वैराग्य शतक एवं श्रृंगार शतक लिख करके भतृहरि ने मनुष्य के दैनिक जीवन की जैसे लगता है समस्त आचारवलियों की स्थापना कर दी है।

हमारे संस्कृत वाङ्मय में प्रमुखतया आहार-विहार, अशन-आसन पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। ''आचार शुद्धौ सत्व शुद्धिः, सत्व शुद्धिः ध्रुवा स्मृतिः।'' मानव जीवन के लिये सात्विक भोजन, सात्विक आचार विचार, सज्जनों की संगति औषधि के समान कही गयी है। ''बिनु सतसंग बिबेक न होई।'' शिक्षा सदसद विवेक की साधना है। कहा गया है ''सदभिरेव सहाशीत सदभिः कुर्वीत संगतिम्। सदभिः विवादं मैत्रीं च, ना सदभिः किंचित आचरेत्।।'' संस्कृत वाङ्मय में हमेशा से जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है। इस बात का हमेशा निर्देश किया गया है, यह समस्त जग ईश्वर से व्याप्त है, रंच मात्र भी कोई जगह खाली नहीं है। एक शिव रूप झीना पर्दा महकता हुआ छाया है ''ईशावास्यमिदं सर्वं'' सद् स्वरूप सुन्दरतम् की अभीप्सा के साथ त्याग से सनी हुई भोग की सदिच्छा भी समायी है। ईश्वर स्वयं चाहता है कोई किसी की वस्तु की इच्छा न करे, त्याग से सुख की कामना करे, तभी मंगल सम्भव है। इसीलिए ईश्वर सदिच्छा की कामना करता है। दूसरों के दुःख को देखकर रोने वालों के हाथ को पकड़कर कहता है, ''प्रिय! मन्मना मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'' मुझे नमस्कार करो, मेरे मन वाला बन जाओ। जिज्ञासु एवं अर्थार्थी से भी यही कामना करता है प्रिय तुम मेरा बनो।

''सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं सर्व पापेभ्यो: मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'' प्रिय! शोक मत करो, मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें समस्त

दु:खों से मुक्त कर दूँगा। क्योंकि प्रणति मुक्ति के लिये आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब तुम्हारे भीतर कर्म का अभिमान न हो, यदि हो तो सद्कर्म का विवेक हो, ''योग: कर्मसु कौशलम्'' कर्म की कुशलता ही योग है। वह योग जो अर्थ के परे दूसरों के लिये अकर्म की अवधारणा हो क्योंकि यही अवधारणा सत्यं शिवं सुन्दरम् की आधारभूमि है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण ने भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग का सुन्दर विवेचन किया है। ज्ञानयोग के माध्यम से स्थिति प्रज्ञता की सार्थकता को विवेचित किया है, बड़े खुले हृदय से अर्जुन से कहा है भगवान ने ''नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते''। भक्ति को भी व्याख्यायित करते हुए भगवान् ने कहा है तुम ''मामेकं शरणं व्रज'' मेरी शरण में आ जाओ प्रिय। प्रपत्तिपूर्वक मुझसे निवेदन करो, अपने कष्टों के निवारण का, अपने भ्रमों के संवरण का। ''अहं सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:'' बलाभिमानता को छोड़कर मेरे मन वाले बन जाओ, इस जगत् में तुम्हारा अपना कुछ है क्या? जिस पर अभिमान करते हो।

प्रिय! आचरण की पवित्रता को हमेशा बनाये रहो, जीवन सार्थक हो जायेगा। तुम मुझे देखो केवल, सूर्योदय को। तभी तुम्हारा सूर्योदय होगा। सूर्यास्त की तरफ कभी मुख ना करो वहाँ सिर्फ दु:खों की काली घनेरी रात क्रमश: दिखायी देगी। फलेच्छा से परे होकर तुम अपने कदम बढ़ाओ तभी मेरी कृपा तुम्हारे उपर बरसेगी। ''कर्मणि एव अधिकार: ते'' तुम्हारा कार्य करने में अधिकार है ''मा फलेषु कदाचन'' किसी फल में तुम्हारा अधिकार नहीं है।

भगवान् के मुख से निकली हुई गीता अमृतमयी दूध की सुगीता है जो हमें निवृत्ति (सन्यास) से प्रवृत्ति (कर्म मार्ग) के लिये प्रेरित करती है। अर्जुन से भगवान् ने कहा ''ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूत हिते रता:'' जो सभी प्राणियों के हित में लगे रहते हैं वे ही मुझे प्राप्त करते हैं। इस प्रकार भगवान् ने मानव जीवन की सार्थकता को इस कथन द्वारा सिद्ध कर दिया है। ''स्वधर्मे निधन: श्रेय: पर धर्मो भयावह:'' अपने मूल धर्म में मरना श्रेयस्कर है दूसरा धर्म भय पैदा करने वाला है। आगे भी उन्होंने अर्जुन से

कहा ''सर्वभूत हितं यो मां भजेति एकत्वं आस्थितः, सर्वथा वर्तमानेऽपि स योगी मयि वर्तते'' जो सभी प्राणियों में मुझे ही देखकर मुझे भजता है पुलकित मन से प्रेम करता है। हे अर्जुन! वही योगी मुझे प्रिय है।

समस्त संस्कृत वाङ्मय मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिये हमेशा से ही प्रयत्नशील रहा है। उसमें नीति कथनों एवं व्यावहारिक ज्ञान के साथ धर्म आचरण पर विशेष बल दिया गया है। आप कहीं भी देख सकते हैं। अनुभवसिक्त सूक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं जैसे ''एकं सद् बहुधा विप्राः वदन्ति'' एक ही सत्य (ईश्वर) को प्रायः ब्राह्मण कहते हैं। ''वरं विरोधोपि समं महात्मभिः'' श्रेष्ठ जनों के साथ विरोध भी श्रेयस्कर है। ''हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'' हितकर एवं मनोहारी बातें कठिनाई से मिलती हैं। अनगिनत सूक्तियों से संस्कृत वाङ्मय भरा पड़ा है। यथा ''विद्या ददाति विनयं'' ''अभ्यासेन विद्या वर्धते'' ''अशोच्येन दारिद्रं वर्धते'' ''परोकाराय् सतां विभूतयः'' ''त्याज्यं न धैर्यं विधुरेपि काले'' इत्यादि। संस्कृत साहित्य का यदि सम्यक् अध्ययन के साथ अनुशीलन करें तो हम अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। शिक्षा के साथ संस्कार के स्तर पर एक स्वस्थ समाज की संरचना कर सकते हैं। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। दक्षिण-पूर्व एशिया की अधिकतर भाषायें, बोलियाँ संस्कृत से ही पैदा हुई हैं । हमारे देश की पुरानी भाषाओं में तमिल, संस्कृत के समीप दिखायी देती है। हजारों-हजार वर्ष पूर्व से यह देवभाषा एक स्वस्थ समाज की संरचना में प्रयत्नशील रही है। क्योंकि व्यक्ति को केन्द्र में रख कर जितना चिन्तन इस भाषा में किया गया है उतना दूसरी अन्य भाषाओं में नहीं है। व्यक्ति से ही समाज की संरचना होती है और समाज से समुदाय, क्षेत्र एवं देश का निर्माण होता है। इस भाषा में व्यक्ति के सामाजिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास पर अधिक बल दिया गया है। नैतिक परितोष जितना भी सम्भव हो सके उतना किया गया है। यथा ''धैर्यं यथा अभ्युदये सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमे''। सात्विक वृत्तियों के उन्नयन के साथ आसुरी वृत्तियों के दमन का यथा सम्भव प्रयास किया गया है। सनातन हिन्दू धर्म के समस्त ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय में ही लिखे गये हैं।

रामायण महाभारत से लेकर अद्यतन। अन्य धर्मों की अपेक्षा सहकार, सद्भाव को स्थापित करने की सदिच्छा दिखायी देती है। यथा ''अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयं, परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीडनम्''।

'एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ़ः'' एक ही देवता सभी प्राणियों में छिपा हुआ है। ''सर्वव्यापी सर्वभूतान्रात्मा, साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च'' चैतन्य स्वरूप ईश्वर केवल साक्षी के रूप में समस्त जगत् को निर्लिप्त भाव से देख रहा है। सन्देश भी दे रहा है, ''कर्म प्रधान बिस्व करि राखा, जो जसु करहिं सो तस फल चाखा।''

वास्तव में ईश्वर कुछ करता नहीं है वह तो अलिप्त भाव से बैठा आपके कर्मों का लेखा-जोखा करता है।

महाकवि वाल्मीकि, वेद व्यास, भास, महाकवि दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, भारवि, महापण्डित माघ, महाकवि हर्ष इत्यादि जितने भी काव्यकार, गद्यकार, नाटककार हुए, सभी का एक ही मुख्य उद्देश्य रहा है व्यक्ति के भीतर नैतिक परितोष के साथ चारित्रिक उन्नयन। इसीलिए इन महाकवियों ने उदात्तचरित नायकों को अपने साहित्य का विषय बनाया, जैसे श्रीराम एवं श्रीकृष्ण। नैतिक परितोष को पाने के लिये ही कल्पित अनेक आख्यान, उपाख्यान मिथकों की रचना की। काव्यशास्त्र एवं धर्मदर्शन के जितने भी विद्वान् हुए सभी का एक ही मुख्य उद्देश्य रहा श्रेष्ठ मानव की परिकल्पना।

शिव स्वरूप महायोगी गोरखनाथ जी का अवतरण समाज में फैल रही दुष्प्रवृत्तियों एवं आडम्बरों का उन्मूलन रहा है। तन्त्र साधना के क्षेत्र में वज्रयानियों एवं वैष्णव सहजयानियों द्वारा समाज में जो खुला व्यभिचार फैलता जा रहा था, उसे समाप्त करने के लिये गोरखनाथ जी एक स्वस्थ सम्प्रदाय की स्थापना की। काम-क्रोध, मद-मोह, लोभ, मात्सर्य से सबसे पहले मनुष्य को विरत होने के लिये सचेत किया। मन की सात्विक पवित्रता ही मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। प्रेम, करुणा, त्याग, सहनशीलता के साथ तपस्या को श्रेष्ठ माना है। महायोगी ने अपने मार्ग द्वारा कामवासना

से निवृत्त होना श्रेयस्कर माना है। शिव साधना का मूल उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। यह तभी सम्भव है जब हम अपने भीतर पैदा होने वाले मनोविकारों को नष्ट करें। अपरिग्रह, क्षमा, दया के साथ तपस्या करते हुए हम शिवानन्द की प्राप्ति करें। ''करतल भिक्षा तरुतल वास'' आसक्ति से दूर रहकर हम परिव्राजक बनें, तभी शिवत्व की प्राप्ति हो सकती है।

वास्तव में महायोगी की यह प्राणवायु इस महादेश में आदिकाल से प्रवाहित रही है, यह प्राणवायु महायोगी के पूर्व से पूर्व भी संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से प्रवाहमान रही, इसे हम किसी भी प्रकार से विस्मृत नहीं कर सकते।

आज जरूरत इस बात की है समस्त आर्यावर्त में देववाणी का पठन-पाठन अनिवार्य रूप से प्रारम्भ हो, साथ ही हम अनुशीलन भी करते रहें, तभी हम जीवन को सुधार सकते हैं। नये बच्चों को देववाणी अनिवार्य रूप से पढ़ावें, अनेक शिक्षा केन्द्र स्थापित करें। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है ''सुन्दर हैं सुमन, विहग सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम्''। हम सुन्दरतम् की सदिच्छा को साथ लेकर आगे बढ़ें, तभी हम श्रेष्ठ मानव का निर्माण कर पायेंगे। अलगाववाद, आतंकवाद से निजात पायेंगे। समदृष्टि का विस्तार कर पायेंगे, छुआछूत, ऊँच-नीच, वर्ण-अवर्ण, धनी-गरीब, अगड़े-पिछड़े इत्यादि अनेक सामाजिक कुरीतियों से मुक्त हो पायेंगे। गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा - ''विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।'' हमें समदर्शी होना पड़ेगा, चाहे वह पढ़ालिखा ब्राह्मण हो, गाय हो, हाथी हो, कुत्ता हो या चाण्डाल व्यक्ति हो। सभी को एक दृष्टि से देखने वाला ही पण्डित कहा जाता है। भेद दृष्टि से कभी हम स्वस्थ समाज की स्थापना नहीं कर सकते। हमें यह संकल्प लेना होगा- ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभाग्भवेत।''

■

प्रकृति पूजा का महापर्व छठ

पंकज चतुर्वेदी

दीपावली के ठीक बाद में बिहार और पूर्वी राज्यों में मनाया जाने वाला छठ पर्व अब देश के एक बड़े हिस्से में फैल गया है। दरअसल जहाँ भी पूर्वांचल के लोग जा बसे हैं, वहाँ वे कठिन तप के पर्व छठ को हरसम्भव उपलब्ध जल-निधि के तट पर मनाना नहीं भूलते। छठ पर्व का प्रमुख सोपान है– प्रकृति ने अन्न दिया, जल दिया, दिवाकर का ताप दिया, सभी को धन्यवाद। एक तरह से 'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा' का भाव। असल में यह दो ऋतुओं के संक्रमणकाल में शरीर को पित्त-कफ और वात की व्याधियों से निरापद रखने के लिए भी आयोजित अवसर है। कार्तिक मास के प्रवेश के साथ छठ की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। छठ के दौरान कुछ दिनों तक दिनचर्या पूरी तरह बदल जाती है। दीपावली की सुबह से ही छठ व्रतियों के घर में खानपान में बहुत सारी चीजें वर्जित हो जाती हैं। अधिकांश घरों में तो सेंधा नमक का प्रयोग होने लगता है।

सनातन धर्म में छठ एक ऐसा पर्व है जिसमें किसी प्रतिमा या मन्दिर की नहीं, बल्कि प्रकृति यानी सूर्य, धरती और जल की पूजा होती है। धरती पर जीवन के लिए, पृथ्वीवासियों के स्वास्थ्य की कामना और सूर्य के प्रताप से धरतीवासियों की समृद्धि के लिए श्रदालु कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। बदलते मौसम में जल्दी सुबह उठना और सूर्य की पहली किरण को जलाशय से टकराकर अपने शरीर पर लेना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। सूर्य की किरणों से मिलने वाला विटामिन डी कैल्शियम को पचाने में मदद करता है। तप-व्रत से रक्तचाप नियन्त्रित होता है और सतत ध्यान से नकारात्मक विचार मन-मस्तिष्क से दूर रहते हैं। यह बरसात के बाद नदी-तालाब और अन्य जल निधियों के तटों पर बह कर आए कूड़े को साफ करने, अपने प्रयोग में आने वाले पानी का स्वच्छ करने, दीपावली पर मनमाफिक खाने के बाद पेट को नैसार्गिक उत्पादों से पोषित करने और ऊर्जा के स्रोत सूर्य के समक्ष खड़े होने का भी पर्व है।

छठ पर्व में प्रयोग होने वाली प्रत्येक वस्तु पर्यावरण को पवित्र रखने

का उपक्रम होती है। बाँस का बना सूप, दौरा, टोकरी, मउनी और मिट्टी से बना दीप, पंचमुखी दीया, हाथी और कन्द-मूल और फल जैसे ईख, सेव, केला, सन्तरा, नींबू, नारियल, अदरक, हल्दी, सिंघाड़ा, चना, चावल इत्यादि। यह ठीक नहीं कि कहीं-कहीं इसकी जगह ले ली है आधुनिक गीतों, आतिशबाजी, घाटों की दिखावटी सफाई, नेतागिरी, गन्दगी, प्लास्टिक-पॉलीथीन जैसी प्रकृति-हन्ता वस्तुओं और बाजारवाद ने। अस्थाई जल-कुण्ड या स्वीमिंग पूल में छठ पूजा की औपचारकिता पूरा करना इस पर्व का मर्म नहीं है। लोग नैसर्गिक जल-संसाधनों तक जाएँ, वहाँ घाटों और तटों की सफाई करें और फिर पूजा करें। यह अच्छी बात है कि कई जगह लोग ऐसा ही करने लगे हैं, लेकिन इस सन्देश का व्यापक प्रसार होना चाहिए कि छठ पर्व नैसर्गिक जल निधियों की चिन्ता करने और पर्यावरण को पोषित करने का भी अवसर है। ध्यान रहे कि कहीं-कहीं तो जिस जल में महिलाएँ पूजा के लिए खड़ी रहती हैं, वह इतना दूषित होता है कि संक्रमण की आशंका बनी रहती है। यह भी समझने की जरूरत है कि पॉलीथीन में खाद्य सामग्री ले जाने से पर्व की पवित्रता तो प्रभावित होती ही है, वह गन्दगी का कारण भी बनती है।

इसी तरह जो काल शान्त तप-आत्ममंथन और ध्यान का होता है उसमें फिल्मी पैराडी पर भजनों के सांस्कृतिक और ध्वनि प्रदूषण से बचा जाना चाहिए। यह भी समझा जाना चाहिए कि छठ के अवसर पर पारम्परिक रूप से ढोलक या मंजीरा बजाकर अपने पारम्परिक गीतों या मौखिक ज्ञान को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का उपक्रम भी होता है। पर्व समाप्त होते ही अनेक स्थानों पर चारो तरफ फैली पूजा सामग्री में मुँह मारते मवेशी और उसमें से अपने लिए कीमती वस्तुएँ तलाशते गरीब बच्चे आस्था की औपचारिकता को ही उजागर करते हैं। यह सही समय है जब छठ पर्व की वैज्ञानिकता, मूल-मन्त्र और आस्था के पीछे के तर्क को भलीभाँति समाज तक प्रचलित-प्रसारित किया जाए। जल-निधियों की पवित्रता, स्वच्छता के संदेश को आस्था के साथ व्यावहारिक पक्षों के साथ लोक-रंग में पिरोया जाए, लोक को अपनी जड़ों की ओर लौटने को प्रेरित किया जाए तो यह पर्व अपने आधुनिक रंग में जीवन को बेहतर बनाने का कारगर उपाय हो सकता है।

यदि हर साल छठ पर्व पर देश भर के नए तालाब खोदने और पुराने तालाबों को संरक्षित करने का संकल्प हो, उनमें गन्दगी जाने से रोकने का उपक्रम हो, नदियों के घाट पर साबुन, प्लास्टिक और अन्य गन्दगी न ले जाने की शपथ हो तो छठ के असली प्रताप और प्रभाव को देखा जा सकता है। स्वच्छ भारत अभियान के दौर में यदि छठ के दिनों को जल-संरक्षण दिवस, स्वच्छता दिवस जैसे नये रंग के साथ प्रस्तुत किया जाए और आस्था के नाम पर एकत्र हुए जनसमूह को इन्हीं सन्देशों से जुड़े सांस्कृतिक आयोजनों से पोषित किया जाए, छठ के संकल्प को साल में दो या तीन बार उन्हीं जल-घाटों पर आकर दोहराने का प्रकल्प किया जाए तो सूर्य का ताप, जल की पवित्रता और खेतों में आई नयी फसल की पौष्टिकता समाज को निरापद कर सकेगी। यदि परम्परा और पद्धति को बारीकी से देखें तो छठ पर्व पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलाने का सामुदायिक पर्व है। यह पूरी तरह से पर्यावरण हितैषी लोकपर्व है। कहीं-कहीं छठ के लिए पूजा करने वाले लोग नदियों और घाटों की विधिवत सफाई खुद करते हैं। इस तरह साल में एक बार खुद-ब-खुद नदी और तालाब की सफाई हो जाती है।

प्रकृति पूजा के इस पर्व में सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। छठ पूजा के दौरान जो भी प्रसाद होता है उससे सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है और फिर सब कुछ लेकर व्रत करने वाले वापस आ जाते हैं। अगर कोई सामान नदी-तालाब के तट पर छूटता है तो वह फूल-पत्ती होती है, जो पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुँचाती। इस तरह देखा जाए तो प्रकृति पूजा का यह महापर्व पूरी तरह से पर्यावरण के हित का आयोजन है। छठ पूजा के अनुष्ठान के दौरान गाये जाने वाले परम्परागत गीत इस बात को दर्शाते हैं कि लोग पशु पक्षियों के संरक्षण की याचना कर उनके अस्तित्व को कायम रखना चाहते हैं। चूंकि छठ के साथ हमारे अन्य अनेक पर्व व्यक्ति, समाज के साथ प्रकृति के कल्याण की कामना करते हैं इसलिए उन्हें मनाते समय उनके मूल उद्देश्य को समझने का भी उपक्रम आवश्यक है।

(साभार - दैनिक जागरण)

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखबानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्कर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

एन.पी./जी.आर-125/14 एन.पी./29075/76

शतावर

शतावर एक औषधीय गुणों वाला पादप है। इसे शतावरी, सतावरी, सतमूल और सतमूली के नाम से भी जाना जाता है। इसका पौधा अनेक शाखाओं से युक्त काँटेदार लता के रूप में एक मीटर से दो मीटर तक लम्बा होता है। इसकी जड़ें गुच्छों के रूप में होती हैं। शतावर का प्रयोग दर्द कम करने, महिलाओं में स्तन्य (दूध) की मात्रा बढ़ाने, मूत्र विसर्जन के समय होने वाली जलन को कम करने के रूप में किया जाता है। इसकी जड़ तन्त्रिका प्रणाली और पाचन तन्त्र की बीमारियों के इलाज, ट्यूमर, गले के संक्रमण और कमजोरी में लाभप्रद है। यह पौधा कम भूख लगने व अनिद्रा की बीमारी में लाभप्रद है। इसे महिलाओं के लिए एक बढ़िया टॉनिक माना जाता है। महिलाओं में बाँझपन को दूर करने में भी इसका प्रयोग होता है। इसका उपयोग होम्योपैथिक औषधियों में होता है।

शतावर के पौधे के विकसित होने एवं कन्द के पूर्ण आकार प्राप्त करने में तीन वर्ष का समय लगता है। इसकी खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है जिसमें जल की निकासी अच्छी तरह होती है तथा जिसमें ज्यादा पानी न ठहरता हो। चूँकि यह कन्दयुक्त पौधा है, अतः दोमट रेतीली मिट्टी में इसे आसानी से खोदकर बिना क्षति पहुँचाये इसके कन्द प्राप्त किये जा सकते हैं।

शतावर की जड़ का उपयोग मुख्य रूप से ग्लैक्टागोज के लिए किया जाता है जो स्तन दुग्ध के स्राव को उत्तेजित करता है। इसका उपयोग शरीर से कम होते वजन में सुधार के लिए किया जाता है। इसकी जड़ का उपयोग क्षय रोग और मधुमेह के उपचार में भी किया जाता है। सामान्य तौर पर इसे स्वस्थ रहने तथा रोगों के प्रतिरक्षण के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसे कमजोर शरीर प्रणाली में एक बेहतर शक्ति प्रदान करने वाला पाया जाता है।

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in I E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ०५५१-२२५५४५५